नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 134 • वर्ष 11 अंक 7
अगस्त 2009 • तीन रुपये • 12 पृष्ठ

बेहिसाब महँगाई से ग़रीबों की भारी आबादी के लिए जीने का संकट

इस महँगाई के कारण प्राकृतिक नहीं – यह मुनाफ़ाखोरी की हवस और सरकारी नीतियों का नतीजा है!

सम्पादक मण्डल

यूपीए सरकार के सौ दिन के एजेण्डे में कही गयी बड़ी-बड़ी बातें बेहिसाब महँगाई के बवण्डर में उड़ गयी हैं। दालों, सब्जियों, चीनी, तेल, मसाले, फल आदि की आसमान छूती कीमतों ने ग़रीबों ही नहीं, निम्न मध्यवर्ग तक के सामने पेट भरने का संकट पैदा कर दिया है। देश के सवा सौ जिलों में सूखे के कारण बहुत बड़ी आबादी के सामने तो भुखमरी के हालात पैदा हो गये हैं। यह हालत केवल बारिश न होने के कारण नहीं हुई है जैसा कि सरकार बार-बार बताने की कोशिश कर रही है। इसके लिए व्यापारियों की मुनाफाखोरी की हवस और उसे शह देने वाली सरकारी नीतियाँ ज़िम्मेदार हैं।

एक ओर मुद्रास्फीति की दर शून्य से भी नीचे जा रही है दूसरी ओर बेहिसाब महँगाई सारे रिकार्ड तोड़ रही है। यह भी बताता है कि पूँजीवादी समाज में आँकड़ों की क्या सच्चाई होती है।

दरअसल कीमतें बढ़ने के लिए उत्पादन की कमी, मानसून आदि मुख्य कारण हैं ही नहीं। अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में कीमतें बढ़ना भी इसका कारण नहीं है। अगर ऐसा होता तो गेहूँ और चावल की कीमतें अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में कम होने के बाद देश में इनकी कीमतें गिरनी चाहिए थीं। महँगाई की असली वजह यह है कि खेती की उपज के कारोबार पर बड़े व्यापारियों, सटोरियों और कालाबाज़ारियों का कब्ज़ा है। ये ही जिन्सों के दाम तय करते हैं और जानबूझकर बाज़ार में कमी पैदा करके चीज़ों के दाम बढ़ाते हैं। पिछले कुछ वर्षों में कृषि उपज और खुदरा कारोबार के क्षेत्र को बड़ी कम्पनियों के लिए खोल देने के सरकार के फैसले से स्थिति और बिगड़ गयी है। अपनी भारी पूँजी और ताक़त के बल पर ये कम्पनियाँ बाज़ार पर पूरा नियंत्रण कायम कर सकती हैं और मनमानी कीमतें तय कर सकती हैं।

सरकार ने वायदा कारोबार की छूट देकर व्यापारियों को जमाखोरी करने का अच्छा मौका दे दिया है। अब सरकार बेशर्मी से कह रही है कि जमाखोरों के कारण महँगाई बढ़ी है। लेकिन इन जमाखोरों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई करने के बजाय केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को कार्रवाई करने की नसीहत देकर खुद को बरी कर लेना चाहती है। लेकिन केन्द्र हो या राज्य सरकारें, जमाखोरी करने वाले व्यापारियों पर कोई हाथ नहीं डालना चाहता। हर पार्टी में इन व्यापारियों की दखल है और सभी पार्टियाँ इनसे करोड़ों रुपये का चन्दा लेती हैं। हाल में हुए चुनावों में इन मुनाफ़ाखोरों ने अरबों रुपये का चन्दा पार्टियों को दे दिया था। अब उसकी वसूली का समय है।

इस महँगाई ने देश की भारी आबादी के लिए हालात कितने मुश्किल कर दिये हैं इसका अन्दाज़ा लगाने के लिए बस यह तथ्य याद कर लेना ज़रूरी है कि 84 करोड़ लोग सिर्फ 20 रुपये रोज़ पर गुज़ारा करते हैं। इनमें से भी लगभग एक तिहाई आबादी तो महज़ 11 रुपये रोज़ पर जीती है। इस महँगाई में यह आबादी किस तरह जी रही होगी इसे सोचकर भी सिहरन होती है। देश के 44 करोड़ असंगठित मज़दूरों पर महँगाई की मार सबसे बुरी तरह पड़ रही है। शहरों में करोड़ों मज़दूर उद्योगों में 1800 से 2500 रुपये मासिक की मज़दूरी पर काम कर रहे हैं। इसमें से भी मालिक बात-बात पर पैसे काट लेता है। लगभग एक तिहाई से लेकर आधी मज़दूरी मकान के किराये, बिजली, बस भाड़े आदि में चली जाती है। ज्यादातर मज़दूर इलाकों में मकानमालिक ही किराने आदि की दूकानें भी खोलकर बैठे रहते हैं और मज़दूरों को मनमानी कीमतों पर सामान बेचते हैं। ज्यादातर मज़दूर थोड़ा-थोड़ा सामान लेते हैं और उन्हें उधार खरीदना पड़ता है इसलिए वे उनसे ही खरीदने को मजबूर होते हैं।

(पेज 12 पर जारी)

"अतुलनीय भारत" : जहाँ हर चौथा आदमी भूखा है!

पिछले विधानसभा चुनाव में बहुमत हासिल कर दोबारा सत्ता पर काबिज होने वाले मध्य प्रदेश के भाजपाई मुख्यमन्त्री शिवराज सिंह चौहान और उनके प्रदेश की झोली में कुछ और तमगे आ गिरे हैं। एक गैर सरकारी संगठन की रिपोर्ट के मुताबिक इस वर्ष मई के महीने के बाद से मध्य प्रदेश के कम से कम चार जिलों में छह वर्ष से कम उम्र के 450 बच्चों की कुपोषण से मौत हो गई है।

राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण-तीन की रिपोर्ट के अनुसार म.प्र. में कुपोषण 54 प्रतिशत से बढ़कर 60 प्रतिशत हो गया है जिसका मतलब यह है कि मप्र के बच्चे भारत के सबसे कुपोषित बच्चे बन गए हैं। लेकिन बात यहीं खत्म नहीं हो जाती। शिशु मृत्यु दर के मामले मे भी मध्य प्रदेश भारत का अव्वल राज्य है जहाँ ज़िन्दा पैदा होने वाले हर 1000 बच्चों में से 72 की पैदा होते ही मौत हो जाती है (नमूना पंजीकरण सर्वेक्षण 2007-08)।

यह गौरव हासिल करने वाला म.प्र. अकेला राज्य नहीं है! राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली उसे कड़ी टक्कर दे रही है। वैसे तो पूरे देश के स्तर पर "अतुलनीय भारत" की यही दशा है। स्थिति कितनी भयावह है इसे स्पष्ट करने के लिए चन्द एक आँकड़े ही पर्याप्त होंगे। विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक भारत के पाँच वर्ष से कम उम्र के 38 फीसदी बच्चों की लम्बाई सामान्य से बहुत कम है, 15 फीसदी बच्चे अपनी लम्बाई के लिहाज से बहुत दुबले हैं, और 43 फीसदी (लगभग आधे) बच्चों का वजन सामान्य से बहुत कम है।

पर्यावरणविद डा. वन्दना शिवा द्वारा हाल ही में जारी एक रिपोर्ट से पता चलता है कि आज देश के हर चौथे आदमी को भरपेट भोजन मयस्सर नहीं हो पा रहा है। कुछ ही साल पहले जारी अर्जुन सेनगुप्ता कमेटी की रिपोर्ट के मुताबिक लगभग 77 प्रतिशत भारतीय 20 रुपया रोज से कम गुजारा करते हैं। उसके बाद से महँगाई जिस रफ्तार से बढ़ी है उसे देखते हुए सहज ही अन्दाजा लगा जा सकता है कि आज की स्थिति और भी भयानक हो चुकी होगी। एक तरफ सरकार मुद्रास्फीति की दर के ऋणात्मक हो जाने की बात कर रही है वहीं दूसरी तरफ पिछले 4-5 सालों में अधिकतर खाद्य पदार्थों की कीमतों में 50 से 100 प्रतिशत का इजाफा हो चुका है। जैसे-जैसे खेती में कारपोरेट सेक्टर की पैठ बढ़ती जा रही है और लोगों की आश्यकताओं के अनुरूप नहीं बल्कि बाज़ार को ध्यान में रखकर खेती करने का चलन बढ़ रहा है, वैसे-वैसे बुनियादी खाद्य पदार्थों की कीमतें बढ़ती जा रही हैं और खाद्य असुरक्षा की स्थिति पैदा हो गयी है।

इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि देश में अन्न की कमी है। अनियंत्रित, अवैज्ञानिक ढंग से खेती करने, किसानों को सरकारी मदद के कमोबेश पूर्ण अभाव और खेती को जुआ बना देने की तमाम कोशिशों के बावजूद विशेषज्ञों का मानना है कि हजारों टन अनाज गोदामों में पड़ा सड़ जाता है और चूहों द्वारा हज़म कर लिया जाता है। इसके अलावा बड़े पैमाने पर अनाज अवैध तरीकों से विदेशों में बेचा जाता है। एक तरफ खेती योग्य जमीन का दूसरे कामों के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है तो दूसरी तरफ अन्न उगाने के बजाय किसानों को नगदी फसलें उगाने का प्रलोभन भी दिया जा रहा है।

देश का एक बहुत बड़ा भूभाग पहले से ही सूखे से जूझ रहा था वहीं इस साल मानसून कम होने के कारण अन्न उत्पादन और भी कम होने की आशंका है। हमारी सुजलाम सुफलाम शस्य श्यामलम धरती अंग्रेज़ शासकों द्वारा निर्मित अकालों के बाद अब देशी हुक्मरानों द्वारा निर्मित अकाल जैसी स्थिति का सामना कर रही है।

(पेज 5 पर जारी)

भीतर के पन्नों पर

पहली अरविन्द स्मृति संगोष्ठी की रपट 'विश्व पूँजीवाद की संरचना एवं कार्यप्रणाली तथा उत्पादन-प्रक्रिया में बदलाव मज़दूर-प्रतिरोध के नये रूपों को जन्म देगा' - पृ. 6

दिल्ली मेट्रो के हज़ारों निर्माण मज़दूरों के नारकीय हालात – पृ. 3

अमानवीय शोषण-उत्पीड़न में जीते तमिलनाडु के भट्ठा मज़दूर – पृ. 4

छँटनी के ख़िलाफ़ कोरिया के मजदूरों का बहादुराना संघर्ष – पृ. 5

फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें? (तीसरी किश्त) पृ. 9

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

मज़दूर वर्ग के हक में

हमारे आज के वर्ग विभाजित समाज में पूँजीपति वर्ग का बोलबाला है। राजतन्त्र उसी के हाथ में है और जो भी सरकार बनती है यह बाहरी तौर पर लोकतन्त्र का दिखावा करते हुए असल में इसी वर्ग के हितों को पूरा करती है। पूँजीपति वर्ग के लिए ही नीतियाँ बनती हैं और उन्हीं पर अमल किया जाता है। ज्यों-ज्यों पूँजीपति वर्ग और शक्तिशाली हो रहा है, त्यों-त्यों मेहनतकश वर्ग का शोषण और बढ़ता जा रहा है। उनके हकों और सहूलियतों को नजरअन्दाज किया जा रहा है। अगर मेहनतकश वर्ग को अपने हकों की रक्षा करनी है तो पूँजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ एक लड़ाई लड़नी होगी। विभिन्न मोर्चों पर लामबन्दी कर, शासक वर्ग को यह चेताना होगा कि हम कमज़ोर नहीं हैं। जैसा कि पहले ज़िक्र किया गया है कि सरकार बड़े पूँजीपतियों के हाथ की कठपुतली है। उसके द्वारा बनायी गयी हर नीति पूँजीपतियों के हितों को पूरा करती है। और सीधे या घुमाफिराकर मेहनतकश वर्ग के हितों पर हमला करती है। यह कहना भी बिल्कुल गलत न होगा कि मेहनतकश वर्ग की दुर्दशा का असली कारण सरकार ही है। वह लगातार ऐसी नीतियाँ और नियम बना रही है जो मज़दूर को रोजी-रोटी को मुहाल कर रही हैं। मज़दूर वर्ग को सरकार की इन नीतियों का डटकर सामना और विरोध करना होगा। एक ऐसा संघर्ष करना होगा कि कोई भी सरकार कोई भी काला क़ानून लागू करने से पहले हज़ार बार सोचे। यह मोर्चा जीतना मेहनतकश वर्ग के लिए सबसे बड़ी चनौती है। यह मुश्किल है लेकिन नामुमकिन नहीं और इस कठिन चुनौती के लिए हर मेहनतकश को तैयार करना होगा, ताकि एक इन्सान की तरह सिर उठाकर जिया जा सके और अपनी अगली पीढ़ी को पूँजीपतियों की गुलामी से आजाद करवाया जा सके।

मनोज

एक मज़दूर, हल्लोमाजरा, चण्डीगढ़

एक मज़दूर की अन्तरात्मा की आवाज़

मेरे प्यारे गरीब मजदूर-किसान भाईयो एवं साथियो। आज की पूँजीवादी व्यवस्था में आला अफ़सरों, अधिकारियों, नेताओं, फैक्टरी मालिकों, साहूकारों, पुलिस अफसरों में मजदूरों का दमन करने की होड़ लगी हुई है। कोई भी साधारण से साधारण व्यक्ति जब उँचे ओहदे वाला अधिकारी बन जाता है तो वह अपनी नैतिक जिम्मेवारी छोड़कर धनाढ्य बनने का सपना देखने लगता है। उसके पास बंगला-गाड़ी हो, चल-अचल सम्पत्ति की भरमार हो इसलिए जनता को लूटना-खसोटना शुरू कर देता है। नेता लोग गरीबों-दलितों को अपने समर्थन में लेने के लिए बड़े-बड़े वायदे करते हैं। गरीबों के उत्थान, रोजी-रोटी, कपड़ा और मकान का वादा करते हैं। गरीबों और दलितों के समर्थन से जब नेता कुर्सी पा जाते हैं तो गरीबों के ख्वाब ख्वाब ही रह जाते हैं। दलित उत्थान का ख्वाब अधर में ही लटक जाता है। सभी नेताओं का यही हाल है चाहे लालू प्रसाद यादव हो, रामविलास पासवान या यूपी की मुख्यमन्त्री बहन मायावती। यह सभी पूँजीपति का साथ पाकर ही सरकार चलाते हैं। इसलिए शोषित मजदूर साथियों, किसान भाईयो, इनके राजनीतिक खेल को समझो और इनके झूठे वायदों में न आओ। जिस तरह नदी का दो किनारा होता है और एक किनारे को पकड़ कर ही हमारा जीवन बच सकता है। उसी तरह देश में दो अलग-अलग वर्ग हैं। एक पूँजीपति वर्ग है जो जुल्म अत्याचार, लूट खसोट करता है। दूसरी तरफ मजदूर वर्ग है जो समाज की हर चीज पैदा करता है। लेकिन जिसे समाज में कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। हर एक मजदूर सारे मजदूर वर्ग के साथ खड़े होकर ही इन्साफ पा सकता है। यही बात बिगुल अखबार के माध्यम से गरीबों, शोषितों, मजदूरों को बतायी जा रही है ताकि उनमें जागृति आये, वे अपने हक के लिए आवाज उठायें। हम आजाद देश के गुलाम हैं। आजादी सिर्फ पूँजीपति वर्ग तक सीमित है, और वह हमारी लूट करता है। वह बल-छल से मजबूत बना हुआ है। यह भस्मासुर है। इसके पास आसुरी शक्तियाँ हैं। इस राक्षस का विनाश करने के लिए हमें एकजुट होना होगा। किसी आदर्शवादी समाजवादी नेता का हाथ पकड़ना होगा जो त्याग, तपस्या, ईमानदारी भरे जीवन से परिपूर्ण हो। ऐसा नेता हमारे लिए एक बूँद खून बहायेगा तो हम उसके लिए दस बूँद ख़ून बहायेंगे। इसलिए शोषित मजदूर भाइयो और ग़रीब किसान भाइयो अपने बाल बच्चों, बहन-बेटी को शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ा कर उनको जागृत करो तथा निडर बनाओ ताकि शोषण, जुल्म के खिलाफ बेहतर जीवन जीने के लिए वे अवाज उठायें।

अमेरिका के मजदूर नेताओं ने मजदूरों के भयंकर शोषण के खिलाफ आवाज उठायी। मजदूरों को 16-18 घण्टे तक काम करता देखकर उन्होंने मजदूरों को संगठित किया। वे मजदूर क्रान्ति के लिए लड़े। उन्होंने फाँसी का फन्दा हँसते हुए चूमा। वे दुनिया के मज़दूरों को सन्देश देकर गये कि दुनिया के मजदूरो एक हो। शहीद भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु आदि वीर नौजवानों ने आजादी के लिए फाँसी का फन्दा चूमा और शोषण और जुल्म के खिलाफ लड़ने का सन्देश दे गये। आज उनके सन्देश को हर मजदूर, देश की समस्त मेहनतकश जनता तक पहुँचाना हमारा फर्ज बनता है। हमें उनका सपना साकार करना है। हमें कुर्बानियाँ देने वाले मजदूर नेताओं के सपने पूरे करने के लक्ष्य को हर मजदूर का लक्ष्य बनाना होगा। कुछ झूठे मजदूर नेता भी हैं जो दुकानदारी चलाते हैं। उनसे सावधान रहना चाहिए। वे धोखेबाज मालिकों के दलाल हैं, उनके चमचे हैं। हमारा कल्याण ईमानदार नेतृत्व से ही हो सकता है।

हमें एकजुट होकर मालिकों, नताओं, आला अफसरों द्वारा हो रहे मज़दूरों के दमन के विरुद्ध, मान-सम्मान की जिन्दगी जीने के अधिकार के लिए संघर्ष करना है। हमें अच्छे नेतृत्व वाले संगठन से जुड़ना होगा। हमें आने वाली पीढ़ी के लिए आजादी हासिल करनी है। एकजुटता से ही हमें आजादी मिल सकती है।

आपका

सिद्धेश्वर यादव

वेल्डर क्रान्तिकारी यूनियन का सदस्य,
फौजी कलोनी, लुधियाना

बोलते आँकड़े चीखती सच्चाइयाँ

- देश में हर तीन सेकंड में एक बच्चे की मौत हो जाती है। इनमें से ज़्यादातर मौतें मामूली इलाज से बचायी जा सकती हैं।
- देश का हर चौथा आदमी भूखे पेट रहता है। दुनिया भर में भूखे रहने वालों का एक तिहाई हिस्सा भारत में रहता है।
- लगभग साढ़े इक्कीस करोड़ लोगों को भरपेट भोजन मयस्सर नहीं।
- विश्व भर में 97 लाख बच्चे पाँच साल की उम्र पूरी करने से पहले ही मर जाते हैं, इनमें 21 लाख (यानी लगभग 21 प्रतिशत) बच्चे भारत के हैं।
- 5 वर्ष से कम उम्र के कुल बच्चों में से आधे बच्चों का वजन सामान्य से बहुत कम है।
- 5 वर्ष से कम उम्र के 38 प्रतिशत बच्चों की लम्बाई सामान्य से कम है।
- 50 प्रतिशत महिलाओं में खून की कमी
- 80 प्रतिशत बच्चों में खून की कमी
- हर 1000 में से 57 बच्चे पैदा होते ही मर जाते हैं।
- गर्भ या प्रसव के दौरान आधी महिलाओं को उचित देख-भाल नहीं मिलती।
- 2003 के मुकाबले अधिकतर खाद्य पदार्थों की कीमतों में 50 से 100 प्रतिशत की वृद्धि हो चुकी है।
- 77 प्रतिशत भारतीय 20 रुपये रोज़ से कम पर गुजारा करते हैं।
- 86 प्रतिशत भारतीय 20 रुपये रोज़ से कम कमाते हैं।

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

अब इण्टरनेट पर भी उपलब्ध है। इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक और राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। हमारा प्रयास होगा कि बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक जल्दी ही वेबसाइट पर उपलब्ध करा दिये जायें।

वेबसाइट का पता :

http://sites.google.com/site/bigulakhbar

'बिगुल' के ब्लॉग पर भी आप इसकी सामग्री पा सकते हैं और अपने विचार एवं सुझाव भेज सकते हैं।

ब्लॉग का पता :

http://bigulakhbar.blogspot.com

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006

सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ

दिल्ली सम्पर्क : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर दिल्ली-94 फोन : 011-65976788

ईमेल : bigul@rediffmail.com

मूल्य : एक प्रति-रु. 3/- वार्षिक-रु. 40.00 (डाक ख़र्च सहित)

बिगुल

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध :

1. **डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**
2. **जनचेतना स्टाल, काफी हाउस बिल्डिंग, हज़रतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे तक)**
3. **जाफरा बाज़ार, गोरखपुर-273001**
4. **जनचेतना सचल स्टाल (ठेला) चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8)**

नारकीय हालात में रहते और काम करते हैं दिल्ली मेट्रो के निर्माण कार्यों में लगे हज़ारों मज़दूर

बिगुल संवाददाता

दिल्ली मेट्रो में कार्यरत मज़दूरों की जीवन-स्थिति यह सोचने के लिए मजबूर कर रही है कि आज़ादी के 63 साल बाद भी क्या सचमुच देश की मेहनतकश आबादी आज़ाद है? और आज़ादी का उसके लिए क्या बस यही मतलब है भी कि हर रोज़ 10-12 घण्टे मौत के कुएँ में ऐसा खेल खेले जहाँ ज़िन्दा बचे तो पगार मिल जायेगी, और अगर मर गये तो न इन्साफ़ मिलेगा न परिवार को रोटी। 12 जुलाई 2009 को दिल्ली के जमरूदपुर मेट्रो हादसे की घटना इसी का एक और प्रमाण है जिसमें 6 मज़दूरों की मौत हो गयी और 20 से 25 मज़दूर गम्भीर रूप से घायल हो गये। इस घटना के बाद डीएमआरसी और सरकार द्वारा खेले गये ड्रामे और किए गए वादों और दावों के बाद भी काम पुराने ढंग-ढर्रे पर ही हो रहा है। हज़ारों मज़दूरों की ज़िन्दगियों को दाँव पर लगाकर दिल्ली मेट्रो का निर्माण कार्य बदस्तूर चल रहा है। वैसे देश में रोज़ाना तक़रीबन 1,000 मज़दूरों की मौत काम के दौरान हो जाती है। इन मौतों के ज़िम्मेदार दोषियों को न तो सज़ा मिलती है, न गिरफ़्तारी होती है और न ही मज़दूरों को कभी इन्साफ़ मिल पाता है।

मेट्रो मज़दूरों की जीवन स्थिति

मज़दूरों के काम की परिस्थितियों दिल दहला देने वाली हैं। मेट्रो के दूसरे चरण में 125 कि.मी. लाइन के निर्माण के दौरान 20 हज़ार से 30 हज़ार मज़दूर दिन-रात काम करते हैं। श्रम क़ानूनों को ताक पर रखकर मज़दूरों से 12 से 15 घण्टे काम करवाया जा रहा है। इन्हें न्यूनतम मज़दूरी नहीं दी जाती है और कई बार साप्ताहिक छुट्टी तक नहीं दी जाती है, ई.एस.आई. और पी.एफ. तो बहुत दूर की बात है। सरकार और मेट्रो प्रशासन ने कॉमनवेल्थ गेम्स से पहले दिल्ली का चेहरा चमकाने और निर्माण कार्य को पूरा करने के लिए कम्पनियों के मज़दूरों को जानवरों की तरह काम में झोंक देने की पूरी छूट दे दी है। मज़दूरों से अमानवीय स्थितियों में हाड़तोड़ काम कराया जा रहा है। उनके लिए आवश्यक सुरक्षा उपाय लागू करने पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। इन्हें जो सेफ्टी हेलमेट दिया गया है वह पत्थर तक की चोट नहीं रोक सकता। इतना ख़तरनाक काम करने के बावजूद एक हेलमेट के अतिरिक्त उन्हें और कोई सुरक्षा सम्बन्धी उपकरण नहीं दिया जाता है। मज़दूर ठेकेदारों के रहमोकरम पर हद से ज़्यादा निर्भर हैं। उन्हें कम्पनी द्वारा किसी ठेकेदार के नीचे के ठेकेदार द्वारा या उससे भी नीचे के उप-ठेकेदार द्वारा काम पर रखा जाता है। इन उप-ठेकेदारों को जॉबर भी कहा जाता है। ये जॉबर मुख्यत: मुख्य ठेकेदार कम्पनी और मज़दूरों के बीच बिचौलिये या दलाल की भूमिका निभाते हैं। ये अपने गाँव के लोगों, परिचितों को व्यक्तिगत सम्बन्धों के बूते शहर के निर्माण स्थलों पर ले आते हैं और उनकी ग़रीबी और कमज़ोर आर्थिक स्थिति का जमकर फ़ायदा उठाते हैं। इन जॉबरों द्वारा रखे जाने वाले मज़दूरों की संख्या 10 से 100 तक की भी होती है। वह ख़ुद उनके रहने का इन्तज़ाम करता है। एक-एक कमरे में 10 से 15 मज़दूर होते हैं जहाँ पर साफ़ हवा, पानी, बिजली, शौचालय आदि की बुनियादी सुविधाएँ तक मयस्सर नहीं होती हैं। ये कमरे जिन्हें दड़बे कहना ज़्यादा उपयुक्त होगा, प्राचीन रोम में गुलामों के लिए बनायी गयी उन छोटी कोठरियों की याद दिलाते हैं जहाँ धूप-पानी और ताजी हवा तक गुलामों को नसीब नहीं होती थी। दिल्ली मेट्रो में कुछ जॉबरों ने तो इस भीषण गर्मी में मज़दूरों के रहने के लिए टीन की चादरों के छोटे-छोटे शैड बना दिये हैं।

ये मज़दूर सुबह भोर से देर शाम तक 14-16 घण्टे काम करते हैं और यह दिनचर्या लगातार चलती रहती है। ये जॉबर किसी क़ानूनी दायरे के अन्तर्गत नहीं आते हैं। ये न तो किसी समझौते से बँधे होते हैं न ही कोई नियम-क़ानून मानने के लिए बाध्य होते हैं। जब कोई मज़दूर अपने हक़ के लिए बात करता है यानि श्रम क़ानूनों व सुरक्षा उपायों को लागू करने के लिए तो तुरन्त डीएमआरसी और ठेका कम्पनी उस जॉबर को बुलवाकर मज़दूरों डरा-धमका देती है या सीधे काम से निकलवा दिया जाता है। ऐसे में जॉबर तुरन्त मज़दूरों से जगह खाली करवा लेता है । ऐसे में मज़दूर एकदम सड़क पर आ जाते हैं। उनके सामने सीधा अस्तित्व का सवाल खड़ा हो जाता है कि या तो वह इसका सामना करने के लिए खड़े हों या फिर समझौता कर लें। ज़्यादातर ऐसी परिस्थिति मज़दूरों को झुकने के लिए तथा सब कुछ सहन करने के लिए मजबूर कर देती है। मेट्रो प्रशासन तथा ठेका कम्पनी साफ़ बच निकलती हैं। मज़दूरों की अपनी कोई यूनियन न होने की वजह से वे सीधे ठेकेदार से हक़ माँगना तो दूर कोई सवाल तक नहीं कर पाते।

मज़दूरों की मज़दूरी का भुगतान और पहचान का सवाल

ठेकेदारों द्वारा काम पर रखे गए मज़दूरों में से किसी को भी क़ानूनी रूप से तयशुदा न्यूनतम मज़दूरी और अन्य क़ानूनी अधिकार और निर्धारित सुविधाएँ नहीं दी जाती हैं। मज़दूरों को मिलने वाली मज़दूरी में काफ़ी अन्तर है क्योंकि ये मज़दूरी मनमाने ढंग से ठेकेदारों द्वारा तय की गयी है। दिल्ली मेट्रो में अकुशल मज़दूरों को 12 घण्टे के काम के लिए 100 से 140 रुपये प्रतिदिन तक दिये जाते हैं जबकि न्यूनतम वेतन के अनुसार क़ानूनन एक अकुशल मज़दूर को 12 घण्टे के काम के 284 रुपये मिलने चाहिए। इससे साफ़ है कि मज़दूरों को उनकी न्यूनतम मज़दूरी से 150 रुपये कम मिल रहे हैं। मज़दूरों को कोई वेतन पर्ची या भुगतान रसीद भी नहीं दी जाती है। इस तरह उनके पास अपने रोज़गार या उसकी अवधि का कोई सबूत नहीं होता है। पहचान के नाम पर मज़दूरों के पास हेलमेट और जैकेट होती है। वैसे नाम के लिए ठेका कम्पनियाँ कुछ मज़दूरों को पहचान पत्र देती भी हैं जो सिर्फ़ खानापूर्ति होती है क्योंकि इस कार्ड पर न तो मज़दूरों का जॉब नम्बर होता है न ही काम पर नियुक्ति की तिथि होती है। दूसरी तरफ़ मेट्रो के लिए काम करने वाले इन निर्माण मज़दूरों को डीएमआरसी ने कोई पहचान पत्र नहीं दिया है और वह उन्हें अपना मज़दूर भी नहीं मानती है। जबकि क़ानूनन मेट्रो के निर्माण से लेकर प्रचालन तक में लगे सभी ठेका मज़दूरों का प्रमुख नियोक्ता डीएमआरसी है।

अपनी पारदर्शिता का दावा ठोकने वाली दिल्ली मेट्रो के पहियों और खम्भों में न जाने कितने मज़दूरों की लाशें दफ़्न हैं। इसका खुलासा अब धीरे-धीरे हो रहा है कि मेट्रो का चमकदार दिखने वाला चेहरा अन्दर से कितना क्रूर है। इसकी तस्वीर एक दैनिक अख़बार की रिपोर्ट बताती है जिसके अनुसार मेट्रो के दस साल के निर्माण कार्य में 200 से ज़्यादा मज़दूर मारे गये हैं। अब तक हुए मेट्रो हादसे में जब भी एक से अधिक मज़दूरों, कर्मचारियों और लोगों की मौत हुई है तो उस पर हल्ला मचा है। इस हल्ले के शोर को कम करने के लिए मेट्रो ने मुआवज़े की घोषणा की है। लेकिन दूसरी तरफ जब भी किसी अकेले मज़दूर, कर्मचारी या राहगीर की मौत हुई है तो मेट्रो उससे पल्ला झाड़ने में जुट गया। और इन इक्का-दुक्का मौत पर मुआवज़ा भी नहीं दिया। नांगलोई में मज़दूरों के मरने की बात हो या मन्दिर मार्ग हादसे की घटना, कहीं भी मेट्रो ने मुआवज़ा नहीं दिया। यही नहीं 22 जुलाई को इन्द्रलोक-मुण्डका लाइन पर मारे गये मज़दूर विक्की की मौत पर भी मेट्रो पल्ला झाड़ता नज़र आया।

ठेका कम्पनियों के प्रति डीएमआरसी की वफ़ादारी

दिल्ली मेट्रो के दूसरे चरण के निर्माण एवं अन्य कार्यों में क़रीब 215 कम्पनियाँ शामिल हैं, जिसमें एलिवेटेड लाइन के निर्माण में गेमन इण्डिया, एल एण्ड टी, एफ़कॉन, आईडीईबी, सिम्प्लेक्स कम्पनी लगी हुई है जबकि भूमिगत लाइनों के निर्माण में एफ़कॉन, आईटीसीएल, आईटीडी, सेनबो

(पेज 5 पर जारी)

मेट्रो कामगार संघर्ष समिति का जन्तर-मन्तर पर प्रदर्शन

जमरूदपुर हादसे में मेट्रो मज़दूरों की मौत के बाद मामले की लीपा-पोती के विरोध में 'दिल्ली मेट्रो कामगार संघर्ष समिति' द्वारा विगत 22 जुलाई को जन्तर-मन्तर पर प्रदर्शन किया गया। 13 जुलाई को दक्षिणी दिल्ली के जमरूदपुर इलाक़े में लांचर गिर जाने से 6 मज़दूरों की दर्दनाक मौत हो गयी थी। इसके बाद हर बार की तरह मामले की लीपापोती की गयी। कामगार संघर्ष समिति के अनुसार इस तरह के हादसे भविष्य में भी हो सकते हैं क्योंकि कॉमनवेल्थ खेलों तक मेट्रो को पूरा करने के लिए काम की रफ़्तार बढ़ा दी गयी है। इस हादसे से कोई सबक़ न लेते हुए दिल्ली मेट्रो मज़दूरों की जान ख़तरे में डालकर अपने टारगेट पूरा करने में लगा हुआ है।

इसके अलावा कई लोगों को मुआवज़ा तक नहीं मिला है। प्रदर्शन में सरकार के सामने ये मुख्य माँगें रखी गयीं : 1. मामले की उच्च स्तरीय न्यायिक जाँच हो, 2. दुर्घटना के ज़िम्मेदार अधिकारियों को बर्ख़ास्त किया जाये, 3. गैमन इण्डिया का ठेका रद्द किया जाये और उसे ब्लैकलिस्ट किया जाये, 4. गैमन इण्डिया के ज़िम्मेदार अधिकारियों पर आपराधिक मामला दर्ज किया जाये और 5. मेट्रो में ठेकेदारी प्रथा बन्द की जाये।

प्रदर्शन में बड़ी संख्या में दिल्ली मेट्रो के निर्माण मज़दूरों और ख़ासकर जमरूदपुर इलाक़े के मेट्रो मज़दूरों ने भागीदारी की। ये मज़दूर मेट्रो कामगार संघर्ष समिति के आह्वान पर आये थे।

'मेट्रो कामगार संघर्ष समिति' के सदस्य पर मेट्रो प्रशासन-ठेका कम्पनी का जानलेवा हमला

मज़दूर जब संगठित होकर अपने हकों के लिए आवाज़ उठाने लगता है तो मालिकान किस कदर बौखला जाते हैं इसका एक नमूना 28 जुलाई 2009 को तब मिला जब मेट्रो कामगार संघर्ष समिति के उपाध्यक्ष विपिन साहू पर मेट्रो प्रशासन-ठेका कम्पनी द्वारा जानलेवा हमला किया गया। एराइज़ कम्पनी के प्रोजेक्ट मैनेजर सुनील कुमार ने धोखे से नजफ़गढ़ डिपो पर पेमेण्ट करने के लिए बुलाकर डिपो के पीछे खुले नये ब्रांच ऑफ़िस में विपिन को चलने को कहा और वहाँ ले जाकर पहले से बुलाये गये तीन गुण्डों के हवाले कर दिया। न केवल उन्हें बन्धक बना लिया बल्कि बन्द कमरे में क़रीब 5-6 घण्टों तक नंगा कर पीटा गया। उन्हें आन्दोलन से पीछे हटने के लिए जान से मारने की धमकी भी देते रहे। रात क़रीब 10 बजे किसी तरह विपिन इन दरिन्दों के चंगुल से अपनी जान बजा कर भाग निकले। अगले दिन जब विपिन व मेट्रो संघर्ष समिति के साथी छावला पुलिस स्टेशन पहुँचे तो पुलिस पूरे दो दिन तक मामले की लीपापोती करती रही और समझौते के लिए दबाव बनाती रही। विपिन व मेट्रो कामगार संघर्ष समिति के सदस्यों को पुलिस स्टेशन के सामने डराने-धमकाने की कोशिश की गयी। उसके बाद एक और अर्ज़ी एसएचओ को दी गयी जिसमें सारी स्थिति का वर्णत करते हुए डाक द्वारा एफ.आईआर भेजने का आग्रह किया गया जो 4 अगस्त को दोपहर में क़रीब ढाई बजे प्राप्त हुई। दूसरी तरफ़ मेट्रो प्रशासन और श्रमायुक्त को शिकायत करने के बाद भी एराइज़ कम्पनी पर कोई कार्रवाई अभी तक नहीं हुई है। मामला साफ़ है कि मेट्रो प्रशासन और पुलिस तन्त्र ठेका कम्पनियों से मिला हुआ है। विपिन साहू मेट्रो आन्दोलन में शुरू से ही शामिल रहे हैं। दिल्ली मेट्रो में बतौर सफ़ाईकर्मी कार्यरत रहे विपिन अपनी क़ानूनी माँगों को लेकर लगातार संघर्ष करते रहे। चाहे 25 मार्च को डीएमआरसी मेट्रो भवन पर न्यूनतम मज़दूरी, साप्ताहिक छुट्टी, पी.एफ. व ई.एस.आई. कार्ड की सुविधा जैसे माँगों को लेकर चेतावनी-प्रदर्शन हो या 5 मई 2009 का प्रदर्शन हो जिसमें वह भी 46 अन्य ठेकाकर्मियों के साथ (जिसमें मेट्रो फ़ीडर बस के चालक और परिचालक भी शामिल हो गये थे) दो दिन के लिए तिहाड़ जेल गये थे।

विपिन साहू 2006 से एराइज़ कार्पोरेट प्रा. लि. में सफ़ाईकर्मी के तौर पर द्वारका मेट्रो स्टेशन पर काम कर रहे हैं तथा नवम्बर 2008 से एराइज़ कम्पनी के अर्न्तगत काम कर रहा था। एराइज़ द्वारा भुगतान मात्र 100 रुपये प्रतिदिन की दर से किया जा रहा था जबकि डीएमआरसी द्वारा श्रम क़ानूनों के तहत द्वारका मेट्रो स्टेशन पर एक बोर्ड लगा रखा है जिस पर न्यूनतम मज़दूरी की दर 186 रुपये लिखी हुई है। लेकिन मेट्रो-प्रशासन और ठेका कम्पनियाँ सारे श्रम क़ानूनों को ताक पर रखकर मज़दूरों का शोषण करती है। जब इस नंगे शोषण और अन्याय के ख़िलाफ़ विपिन ने आवाज़ उठाई तो 30 मार्च, 2009 को उन्हें काम से निकाल दिया गया। इस बात को लेकर विपिन साहू ने अपनी शिकायत 'सहायक श्रमायुक्त (केन्द्रीय)' के. जी. मार्ग को 31 मार्च 2009 के समक्ष दर्ज करवाई, जिसके तहत श्रम समझौता अधिकारी तेज बहादुर ने एराइज़ कम्पनी को न्यूनतम मज़दूरी की दर से भुगतान करने का आदेश दिया। तेज बहादुर ने मेट्रो प्रशासन के श्री आर.के. झा को भी मामले से परिचित कराया और भुगतान करवाने को कहा। 15 जुलाई को एक अन्य मेट्रो अधिकारी श्री एस के सिन्हा से भी मेट्रो भवन में मिलकर अपनी क़ानून न्यूनतम मज़दूरी और श्रम क़ानूनों को लागू करवाने के लिए कहा गया था। इन्हीं सब कोशिशों और संघर्ष समिति के आन्दोलन के फैलते जाने से सभी ठेकेदार कम्पनियाँ बौखलायी और घबरायी हुई थीं। इसी बौखलाहट के चलते एराइज़ कम्पनी ने विपिन को निशाना बनाया।

अमानवीय शोषण-उत्पीड़न के शिकार तमिलनाडु के भट्ठा मज़दूर

पूरी मानव सभ्यता एक तरफ़ जहाँ उन्नति के शिखर पर पहुँच चुकी है, वहीं दूसरी तरफ़ इसे शिखर पर पहुँचाने वाली आबादी का जीवन लगातार रसातल की ओर जा रहा है। आपने बड़े-बड़े पाँच सितारा होटलों, जगमगाते मॉलों, अस्पतालों, गगनचुम्बी इमारतों को तो देखा होगा, लेकिन क्या आपने इन इमारतों में लगी ईंटों को बनाने वाले उन ईंट-भट्ठा मज़दूरों के बारे में कभी सोचा है कि वे किन हालात में रहते और काम करते हैं?

तमिलनाडु राज्य में लाखों ईंट-भट्ठा मज़दूर (जिनमें महिलाएँ और बच्चे भी शामिल हैं) भयंकर शोषण-उत्पीड़न के शिकार हैं। हर ईंट शोषण-उत्पीड़न की एक कहानी सुनाती है। निहायत एकरस, बोझिल लेकिन कठिन हालात में उन्हें 12 से 16 घण्टे रोज़ाना काम करना पड़ता है। उन्हें मज़दूरी भी कम ही दी जाती है और बँधुआ मज़दूरों की एक पूरी पीढ़ी तैयार कर दी जाती है।

एक गैर सरकारी संस्था की रिपोर्ट के अनुसार केवल तमिलनाडु में लगभग 2000 ईंट-भट्ठे हैं। इनके अलावा छोटे-छोटे सेक्टरों में हज़ारों यूनिटें काम करती हैं। इन भट्ठों में काम करने वाले लगभग 90 प्रतिशत मज़दूर दलित और अनुसूचित जातियों-जनजातियों से आते हैं, बाक़ी 10 प्रतिशत पिछड़ी और अति पिछड़ी जातियों से आते हैं। सबसे अधिक मज़दूर तिरूवल्लूर और कांचीपुरम ज़िलों के हैं।

भट्ठा मज़दूरों को एडवांस पेमेण्ट देकर मालिक ठेकेदार निश्चिन्त हो जाना चाहते हैं ताकि मज़दूर काम छोड़कर जा न सकें और ऑफ सीजन के बाद इन मज़दूरों को दोबारा उसी भट्ठे पर काम करना पड़े। ईंट बनाने की सात चरणों की प्रक्रिया में कुशल मज़दूरों को पीस रेट के हिसाब से मेहनताना नहीं दिया जाता। ईंट बनाने का काम सात चरणों से होकर गुजरता है जिसमें कूटना, इकट्ठा करना, मिट्टी के साथ मिलान, ईंट के आकार में ढालना उसे भट्ठे तक पहुँचाना और फिर उसे पकाना शामिल हैं। एडवांस पेमेण्ट देकर मालिक और ठेकेदार मज़दूरों की आज़ादी छीन लेते हैं ताकि वे कहीं बेहतर हालात वाली जगह न चले जायें।

ईंट-भट्ठा यूनिट बहुत अधिक मुनाफ़ा कमाने वाला क्षेत्र है, जिसका फ़ायदा सिर्फ़ मालिकों और ठेकेदारों को मिलता है। लेकिन यहाँ काम करने वाले मज़दूरों की हालत किसी नर्क से कम नहीं है। जानवरों से भी बदतर हालात में काम करने को वे मजबूर हैं।

कम मज़दूरी देकर तथा दूसरी जगह उनका प्रवास (मोबिलिटी) सीमित करने के अलावा और बहुत से तरीक़ों से स्त्री-पुरुष दोनों ही मज़दूरों का शोषण किया जाता है। लेकिन वे मालिकों और ठेकेदारों के डर से अपनी दुरुह जीवन स्थिति किसी को बताने से हिचकते हैं। उनकी दुरुह जीवन स्थिति का अन्दाज़ा इन बातों से लगाया जा सकता है।

पी. सेल्वी नाम की स्त्री मज़दूर ने बताया कि वह 2006 से भट्ठा मज़दूरी का काम कर रही है। उसका बेटा भी उसी के साथ रहकर काम करता है। लेकिन मालिकों ने उसे गाँव के एक घर में 29 दिनों तक बन्द करके रखा क्योंकि उसने काम छोड़ने की कोशिश की। घर में ताला लगा दिया गया और शौचालय तक जाने के लिए वाचमैन की दया पर निर्भर रहना पड़ता था जिसके पास चाबी रहती थी।

तिरुवल्लूर ज़िले के एक गाँव के के. गोपी को, जो फरवरी, 2008 से बँधुआ मज़दूर है, तब भट्ठा मालिकों के कोपभाजन का शिकार होना पड़ा, जब उसने एक मज़दूर की आठ वर्ष की गुमशुदा बच्ची को ढूँढने में मदद की। उत्पीड़न की भयंकर घटनाओं में एक और एन. रंगास्वामी की कहानी है जो 50 वर्षीय मज़दूर है। उसे भट्ठा मालिकों ने बुरी तरह पीटा और जंजीरों से बाँधे रखा, सिर्फ़ इसलिए कि उसकी बेटी और दामाद ने अचानक काम छोड़ दिया।

कुछ जगहों पर तो मज़दूरों को बेहद छोटी-छोटी ग़लतियों पर लाठियों-डण्डों से बुरी तरह पीटा जाता है। महिला मज़दूरों से भी अभद्र-अश्लील व्यवहार किया जाता है। दूसरे मज़दूरों को डराने के लिए अनुशासन के नियम तोड़ने वाले मज़दूरों को भयंकर सजाएँ दी जाती हैं। जिन मज़दूरों को एडवांस भुगतान दिया जाता है, उन्हें रात में ताले में बन्द कर दिया जाता है ताकि वे भाग न सकें।

ये तो सिर्फ़ चन्द एक उदाहरण हैं जिनका मज़दूरों ने डरते-डरते ज़िक्र किया।

भट्ठा मज़दूर भयंकर कठिन परिस्थितियों में काम करने के लिए अभिशप्त हैं। बिना आराम दिये लम्बे-लम्बे समय तक उनसे कठिन काम लिया जाता है। मज़दूरों ने बताया कि ज़्यादातर ईंट चैम्बरों में 3 बजे दोपहर से काम शुरू होता है जो 7 बजे शाम तक चलता है। उसके बाद 6 घण्टे का ब्रेक होता है और ब्रेक के बाद रात 1 बजे से दुबारा काम शुरू होता है जो 10.30 बजे सुबह तक चलता है। चूँकि ईंट को सुखाने के लिए ज़्यादा समय तक धूप में रखने की ज़रूरत होती है इसलिए मज़दूर केवल दिन में ही सो पाते हैं। ईंट ढुलाई करने वाले मज़दूरों का यही रुटीन है। दिन में उन्हें सिर्फ़ ग्यारह बजे से दो बजे तक का समय मिलता है, जिसमें वे खाना बना सकते हैं। तीन बजे से फिर काम पर लग जाना होता है।

भट्ठों में काम करने वाले बाल मज़दूरों की स्थिति तो और भी भयंकर है। एक रिपोर्ट के अनुसार भट्ठों में 6 से 8 साल की उम्र के लगभग एक लाख बच्चे काम करते हैं। इसके अलावा लगभग 60,000 बच्चे ऐसे हैं, जो अपने माँ-बाप के साथ, कार्यस्थल पर जाकर उनका हाथ बँटाते हैं। इसमें से 80 प्रतिशत प्रवासी मज़दूरों के बच्चे हैं, जो स्कूल नहीं जा पाते।

ज़्यादातर बच्चों को ईंट सुखाने के लिए घरोनो में लगाने, टूटे-फूटे ईंटों को इकट्ठा करने और ईंटों को साँचे में ढालने के काम में लगाया जाता है। लेकिन उन्हें बहुत ही कम मज़दूरी दी जाती है। बच्चों की देखभाल की व्यवस्था न होने के कारण छोटे बच्चों को महिलाएँ कार्यस्थल पर ही ले आती हैं, जिनकी देखभाल थोड़े बड़े बच्चे ख़ासकर लड़कियाँ करती हैं।

ये मज़दूर 6 X 8 फुट के सीलनभरे, बदबूदार, बन्द दड़बेनुमा कमरों में रहते हैं, जहाँ शौचालय की कोई व्यवस्था नहीं होती। ब्रिक चैम्बर के पास कोई अस्पताल न होने के कारण मज़दूरों को ख़ासकर स्त्री मज़दूरों को काफ़ी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं।

पूँजीवादी समाज में एक मज़दूर की कीमत मशीन के कल-पुर्जे से ज़्यादा नहीं होती है। पूँजीपति उन्हें सिर्फ़ उतना ही देता है जिससे वे ज़िन्दा रह सकें और काम कर सकें, तथा बच्चों के रूप में गुलामों की नयी पीढ़ी तैयार कर सकें।

कितना घिनौना मज़ाक़ है कि जो दूसरों के लिए घर बनाने का सामान मुहैया कराते हैं वे गन्दी झोंपड़ियों या दड़बेनुमा कमरों में रहते हैं। दूसरों के बच्चों के लिए स्कूल बनाते हैं लेकिन उनके खुद के बच्चों ने स्कूल का मुँह तक नहीं देखा, दूसरों को स्वास्थ्य सुविधाएँ मिल सकें इसके लिए वे अस्पताल बनाते हैं लेकिन इन मज़दूरों के लिए कोई अस्पताल नहीं है। वे सड़कों पर दम तोड़ देते हैं। वे कारख़ाने बनाते हैं जिनमें हज़ारों लोगों को रोज़गार मिलता है लेकिन खुद स्थाई रोज़गार से वंचित रहते हैं।

तमिलनाडु के स्वास्थ्य विभाग के प्रेसीडेण्ट ने बताया कि प्रवासी मज़दूरों के ज़्यादातर बच्चे घातक बिमारियों की चपेट में हैं। लगातार धूप और गर्मी में रहने से त्वचा की एलर्जी, एलर्जिक ब्रोंकाईटिस तो आम बात है। गन्दे दूषित पानी से पैदा होने वाली पेट की बीमारियाँ हर तीसरे-चौथे बच्चे को पकड़े हुए हैं। पेचिश, पीलिया, दमा, टी.बी. जैसी बीमारियाँ बड़े पैमाने पर फैली हुई हैं। ज़्यादातर बच्चे कुपोषण और खून की कमी से पीड़ित हैं।

एक ध्यान देने लायक बात और है कि भट्ठा मालिक अलग-अलग मज़दूरों को काम देने के बजाय उन मज़दूरों को काम पर रखने या एडवांस देने को प्राथमिकता देते हैं जो शादीशुदा हैं। इसीलिए कुछ जगहों पर लड़कियों की जल्दी शादियाँ कर दी जाती हैं।

लगभग 12 वर्ष की लड़की और 16 वर्ष के लड़के की शादी करा दी जाती है। चूँकि विवाहित जोड़ों को काम का मौक़ा ज़्यादा मिलता है इसलिए ज़्यादातर परिवार जो स्थानीय साहूकार के ऋणी हैं और भट्ठा मालिकों से अग्रिम एडवांस ले चुके हैं, वे बीमार होने या काम न कर सकने की स्थिति में अपने बच्चों को काम पर लगा देते हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी बँधुआ मज़दूरी के दुश्चक्र में फँस जाते हैं।

कहने के लिए तो बहुत से क़ानून मज़दूरों की रक्षा के लिऐ बनाये गये हैं, जिनकी मदद से वे अपने अधिकारों के लिए आवाज़ उठा सकते हैं, लेकिन ये क़ानून सिर्फ़ काग़ज़ी हैं। हालाँकि ज़्यादातर मज़दूर इन क़ानूनों से अनजान हैं लेकिन अगर वे जानते भी तो उनके पास न तो इतना पैसा है और न ही इतना समय कि वे कोर्ट-कचहरी का चक्कर लगा सकें।

दिल्ली, बम्बई, पंजाब, तमिलनाडु, बंगाल से लेकर तमाम छोटे-बड़े शहरों में भट्ठा मज़दूर गुलामों जैसी ज़िन्दगी बसर कर रहें हैं। भले ही आज वे चुप बैठे हैं लेकिन उनकी ज़िन्दगी के हालात उन्हें बग़ावत की और धकेल रहे हैं। जब भी देश में कोई व्यापक, संगठित मज़दूर आन्दोलन होगा, तो ये मज़दूर उनके साथ जुड़कर बड़ी ताक़त बन जायेंगे क्योंकि जिन मज़दूरों में बड़े-बड़े निर्माण करने की क्षमता है, उनमें लूट और अन्याय पर टिकी इस बर्बर, मानवद्रोही व्यवस्था को धूल में मिलाने की ताक़त भी है।

नमिता

रामचरस को इन्साफ़ कब मिलेगा?

रामचरस लगभग 20 वर्ष पहले रोजी-रोटी की तलाश में लुधियाना आया। उत्तर प्रदेश के सन्त कबीर नगर ज़िले के रहने वाले रामचरस की पृष्ठभूमि किसानी से जुड़ी है। थोड़ी बहुत ज़मीन होने के कारण घर का गुज़ारा मुश्किल से चलता था। इसलिए रामचरस की पढ़ाई नहीं हो सकी। जवान होने पर बाक़ी भाइयों की शादी हो गयी तो थोड़ी सी पुश्तैनी ज़मीन की खेती से सबका गुज़ारा हो पाना कठिन हो गया। इसलिए 18-19 वर्ष की उम्र में ही रामचरस को घर छोड़कर लुधियाना में काम की तलाश में आना पड़ा। यहीं उसके दो भाई रेहड़ी लगाते थे।

रामचरस ने कई कारख़ानों में काम किया। लेकिन पिछले चार वर्षों से वह जे. पी. हैण्डलूम फ़ैक्टरी में काम कर रहा था जो कि महावीर जैन कलोनी में स्थित है। इसका मालिक परबिन्द मित्तल है जोकि शिव सेना हिन्दोस्तान का प्रदेश अध्यक्ष भी है और दो बार चुनाव भी लड़ चुका है। जनकपुरी जीरो नम्बर गली में इसकी कोयले की बड़ी दुकान है और लुधियाना के सेक्टर-32 में आलीशान बंगला है।

रामचरस का परिवार उसके साथ ही रहता है। उसके सात बच्चे हैं। चार लड़के और तीन लड़कियाँ। कठोर मेहनत के बाद मुश्किल से परिवार का पेट भरता था। बड़ा लड़का पाँचवीं तक पढ़ने के बाद रेहड़ी लगाकर मूँगफली बेचता है। उससे छोटा 10 वर्ष का लड़का एक होटल में बर्तन साफ़ करता है। बाक़ी छोटे बच्चे घर में अपनी माँ के साथ शाल के बम्बल बनाने का काम करते हैं। उससे इतनी कम कमाई होती है कि सारा दिन खटने के बाद मुश्किल से 20 से 50 रुपये ही कमा पाते हैं।

इस परिवार पर पहाड़ तब टूट पड़ा जब वूलन मिल में काम करते समय एक दिन रामचरस की बाईं बाजू डबलिंग मशीन में आ गयी। वजह थी मशीन की शाफ़्ट पर एक बोल्ट की ग़ैरज़रूरी लम्बाई जिसे कटवाने के लिए पहले ही मालिक को कह दिया गया था लेकिन उसने ध्यान नहीं दिया। आख़िर यह हादसा हो गया। रामचरस मशीन के बीच मदद के लिए छटपटा रहा था। उसकी बाजू कटकर लटक चुकी थी। खून बह रहा था। बाक़ी कारीगर मालिक को बुलाने के लिए फोन लगा रहे थे क्योंकि वे समझते थे कि मालिक आ जाये तो वही इलाज करवायेगा। अगर न बुलाया गया तो कहीं मुकर ही न जाये। 10 मिनट बाद उसे मशीन से अलग किया गया। मालिक के आने पर एक घण्टे बाद उसे सिविल अस्पताल पहुँचाया गया। इस समय तक रामचरस बेहोश हो चुका था। जब होश आया तो मालिक परबिन्द मित्तल और तीन अन्य फ़ैक्टरी मालिक वहाँ मौजूद थे। उसकी पत्नी और भाई भी पास था।

डॉक्टरों ने सर्जरी करके बाँह जोड़ दी। जाँघों से मांस निकाल कर बाँह में भरा गया। डॉक्टरों ने मालिकों से कहा कि मरीज बहुत कमज़ोर है इसलिए हालत सुधरने पर ही अस्पताल से ले जाया जाना चाहिए। 9 दिन तक इलाज चला। 10वें दिन मालिक और अन्य तीन लोगों ने रामचरस को उठाया और कहा कि क्या वह उन्हें पहचानता है। रामचरस ने हाँ में उत्तर दिया। मालिक ने उसे सहारा देकर कमरे का चक्कर लगवाया और बेड पर लिटा दिया। रामचरस ने कहा कि उसे चक्कर आ रहे हैं। मालिक और उसके दोस्त चले गये। थोड़ी देर बाद वे एक स्ट्रेचर ले आये और अस्पताल के स्टाफ़ तथा मरीज के विरोध के बावजूद रामचरस को उठा कर स्ट्रेचर पर डालकर सरां में ले आये। यहाँ ठीक से इलाज होने का भरोसा दिया गया। लेकिन वहाँ देख-भाल करने वाला कोई नहीं था। रामचरस और उसका परिवार असहाय और बेबस था।

दूसरे दिन मालिक कोरा काग़ज़ ले आया। रामचरस और परिवार के हस्ताक्षर लेने चाहे तो उन्होंने मना कर दिया। मालिक गन्दी गालियाँ देता हुआ वापिस चला गया। जाते हुए वह कहता गया 'साले पड़ा पड़ा मर जायेगा लेकिन दवा के पैसे नहीं दूँगा'। जाता हुआ वह दवा की पर्चियाँ भी ले गया। बाद में दवा खरीदने में भी दिक़्क़त आयी। कुछ दिनों बाद कार लेकर मालिक आया और पेंशन के फार्म भरने के लिए रामचरस, उसके भाई और पत्नी को कचहरी के किसी वकील के पास ले गया। वहाँ उसने रामचरस के ठीक होने पर फ़ैक्टरी में सुरक्षा गार्ड की नौकरी देने का भरोसा भी दिया। उसका अँगूठा काग़ज़ पर लगवा लिया। उसे वापिस अस्पताल छोड़ने के बाद फिर कभी वापिस नहीं आया। रामचरस के बड़े भाई एक शादी में घर जा चुके थे इसलिए पैसा भी पास नहीं था। पत्नी ने लोगों से माँग-माँग कर कुछ दिन इलाज करवाया। महीने बाद रामचरस ने फ़ैक्टरी फोन किया लेकिन मालिक ने बिना बात सुने ही फोन काट दिया। तंग आकर वह फ़ैक्टरी गया और मालिक से इलाज के लिए पैसों की माँग की और नौकरी देने की बात कही। मालिक ने गालियाँ देते हुए कहा कि 'भाग जा नहीं तो जूते खायेगा। मैंने अपने बच्चे नहीं पालने?'। परेशान रामचरस लौट आया। एक बार फिर फ़ैक्टरी गया था लेकिन मालिक ने पैसे देना तो दूर मिलने तक से इनकार कर दिया। परिवार भुखमरी की हालत में था। रामचरस की पत्नी रोती हुई बार-बार कह रही थी 'मालिक ने हमारे साथ ठीक नहीं किया। सुबह से रात तक की इतनी मेहनत की यह सजा मिली'।

रामचरस ने एक यूनियन के ज़रिये लेबर आफ़िस में शिकायत दर्ज करवायी। पेशी पर मालिक ने रामचरस से कहा कि तुमने तो समझौते के काग़ज़ पर खुद ही अँगूठा लगाया था तो रामचरस हैरान रह गया। उसने तो पेंशन के काग़ज़ों पर अँगूठा लगाया था। तभी उसे मालिक की धोखाधड़ी समझ में आई। मालिक ने उसे धमकी दी कि अब अगर दुबारा उसे परेशान किया तो मार कर खेतों में फेंक देगा और सारा झंझट ही ख़त्म कर देगा।

फ़रवरी में रामचरस की बाँह काट दी गयी क्योंकि इलाज सही न होने की वजह से वह सड़ गयी थी। जान बचाने के लिए बाँह काटनी ज़रूरी थी। अब कटी बाँह लेकर रामचरस लेबर कोर्ट के चक्कर काट रहा है कि शायद इन्साफ़ मिल ही जाये।

यह कहानी सिर्फ़ रामचरस की नहीं है बल्कि यह करोड़ों मज़दूरों की कहानी है।

राजविन्दर

छँटनी के ख़िलाफ़ कोरिया के मजदूरों का बहादुराना संघर्ष

मन्दी के दौर में दुनिया भर में छँटनी-तालाबन्दी का दौर जारी है। लेकिन मज़दूर भी चुपचाप इसे झेल नहीं रहे हैं। जगह-जगह वे इसके ख़िलाफ़ जुझारू तरीके से लड़ रहे हैं। कई देशों में मज़दूरों ने छँटनी के विरोध में फैक्ट्री पर ही कब्ज़ा कर लिया और पुलिस तथ सशस्त्र बलों से जमकर टक्कर ली।

इसी कड़ी में पिछले दिनों कोरिया की एक ऑटोमोबाइल कंपनी द्वारा नौकरी से निकाले जाने पर उसके मजदूरों ने फैक्ट्री पर कब्जा कर लिया और 77 दिनों तक सशस्त्र बलों का डटकर सामना किया। 6 अगस्त 2009 को दक्षिणी कोरिया की स्यांगयोंग मोटर कम्पनी में 77 दिनों तक चले संघर्ष के बाद मजदूर एक समझौते के तहत बाहर आये। सरकार की पूरी ताकत का उन्होंने मुकाबला किया और उसे समझौते के लिए बाध्य किया।

दरअसल इस कंपनी ने पुनर्गठन करने का बहाना बनाकर इस संयंत्र के 970 मजदूरों को नौकरी से निकालने का आदेश तीन महीने पहले दिया था। इसके विरोध में मजदूरों ने 22 मई 2009 को कंपनी पर कब्जा जमा लिया। इन 77 दिनों के दौरान मजदूरों ने स्थानीय पुलिस और फौज का बहादुरी के साथ जमकर मुकाबला किया। आखिर में पुलिस ने चारों ओर से घेरेबन्दी करके हेलीकॉप्टर से गोलियाँ बरसायीं। लेकिन इससे भी डरे बिना मज़दूरों ने खुद बनाये हुए पेट्रोल बमों से उसका जवाब दिया। हमले में कई मज़दूर घायल भी हुए। आखिरकार सरकार को झुकते हुए आखिर तक डटे रहे मज़दूरों को काम पर रखे रहने का समझौता करना पड़ा। बाहर आये एक बूढ़े मज़दूर ने कहा कि हालाँकि हम कोई अच्छा समझौता तो नहीं कर पाये लेकिन मुझे गर्व इस बात का है कि हम बहादुरी से लड़े...।

दक्षिण कोरिया को पूँजीवाद समर्थक एक मॉडल के रूप में पेश करते रहे हैं। खासकर अमेरिका दक्षिण कोरिया को एक ऐसे उदाहरण के रूप में दिखाता है कि पूँजीवादी नीतियों का समर्थक होने के चलते उसने कितनी जल्दी तरक्की की है। लेकिन दक्षिण कोरिया की तरक्की का झूठ बहुत पहले ही सामने आ चुका है। आज वहाँ की कई बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ बर्बादी की कगार पर हैं। कई बड़ी कम्पनियों के शीर्ष अधिकारी और सरकार के मंत्री भ्रष्टाचार के गंभीर आरोपों में फँसे हुए हैं। अनेक दक्षिण कोरियाई कंपनियों को विदेशी पूँजीपतियों द्वारा अधिगृहित किया जा रहा है या खरीदा जा रहा हैं। वहाँ वह चन्द मुट्ठी भर ऊपर के तबके की तरक्की हुई है। आम मेहनतकश आबादी में भयंकर असन्तोष व्याप्त है। वर्तमान मन्दी की वजह से नौकरी से निकाले जाने से यह असन्तोष लगातार बढ़ता जा रहा है।

दक्षिण कोरिया में जुझारू मजदूर आन्दोलनों का लम्बा इतिहास रहा है। कोरियाई मजदूर खासतौर पर अपने जुझारूपन के लिए जाने जाते रहे हैं। वहां दिसम्बर' 96 से लेकर जनवरी' 97 तक हुई व्यापक पैमाने की आम हड़ताल ने सरकार को झुका दिया था और तब उसे मजदूरों की कई माँगों को मानना पड़ा था। इस देश के मजदूर आन्दोलन को हमेशा छात्रों-नौजवानों का समर्थन और सक्रिय सहयोग मिलता रहा है। इसी तरह छात्रों-नौजवानों के आन्दोलनों में मजदूर कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ते रहे हैं।

राजधानी सोल से 40 मील दूर दक्षिण में स्थित स्यांगयोंग मोटर कंपनी दक्षिण कोरिया की पाँचवी सबसे बड़ी वाहन निर्माता कंपनी है। 2004 में इस कंपनी के काफी शेयर चीनी कंपनी शंघाई ऑटोमोटिव इंडस्ट्रीज़ द्वारा खरीद लिये गये थे। मंदी के चलते कम्पनी काफी लंबे समय से बिक्री कम होने और कर्ज बढ़ते जाने का बहाना बनाकर मजदूरों को निकालने की कोशिश कर रही थी। जनवरी में कंपनी ने दिवालिया होने से सुरक्षा देने के लिए सरकार के पास अर्जी दी थी और तब से 2000 मजदूर स्वैच्छिक रूप से नौकरी छोड़ कर चले गये थे।

मई में शेष बचे लगभग 970 मजदूरों को भी नौकरी से निकालने का आदेश देते ही मजदूर भड़क उठे। मजदूरों ने 22 मई को कंपनी पर कब्जा करना शुरू कर दिया था। शुरुआत में कंपनी और सरकार ने बातचीत के जरिए मजदूरों को बहलाने की कोशिश की। लेकिन उचित समाधान न होने तक कब्जा न छोड़ने की मजदूरों की बात पर सरकार ने भयंकर दमन का सहारा लेना शुरू किया। सरकार ने कंपनी की पानी की आपूर्ति काट दी। कंपनी परिसर को घेरकर खाने-पीने का सामान अंदर पहुँचाने पर रोक लगा दी। लेकिन मज़दूरों के समर्थकों ने उन्हें खाना-पानी पहुँचाने के रास्ते निकाल लिये। कंपनी ने किराए के गुण्डों और कंपनी समर्थक मजदूरों के जरिए कब्ज़ा खत्म कराने की कई कोशिशें कीं जो नाकाम रहीं।

इसके बाद सरकार ने बर्बर दमन का सहारा लिया। कंपनी परिसर को युद्ध-क्षेत्र में तब्दील कर दिया गया। चारदीवारी से और हेलीकॉप्टर के जरिए सशस्त्र हमला किया गया जिसका मजदूरों ने मुँहतोड़ जवाब दिया। मजदूरों ने बम फेंककर पुलिस कमाण्डो को अंदर आने से रोके रखा। इस दमन ने उल्टे मजदूरों की एकजुटता को और मजबूत कर दिया। हमला झेल रहे मजदूरों की एकता फौलादी और मजबूत इरादों से लैस होती गयी। आखिरकार सरकार को झुकना पड़ा और उसने लड़ रहे मजदूरों को काम पर रखने का आश्वासन दिया। कब्ज़ा समाप्त होने पर बाहर निकले मजदूरों का इस संघर्ष के समर्थकों और उनके परिवार के लोगों ने हर्षोल्लास के साथ स्वागत किया। इस फौरी जीत पर मजदूरों की जीत के नारे लगाये गये और क्रान्तिकारी गीत गाये गये।

दुनियाभर में आज मजदूर आंदोलन निराशा के भंवर में डूब-उतरा रहा है। इतिहास के इस छोटे से कालखण्ड को ही कुछ लोग हमेशा बना रहने वाला सच मान लेते हैं। स्यांगयोंग कंपनी की घटना यह बताती है कि आज की पस्तहिम्मती के माहौल में भी मज़दूर जुझारू ढंग से लड़ सकते हैं और एकजुटता के दम पर पुलिस-फौज का भी मुकाबला कर सकते हैं।

अगर बिना किसी नेतृत्व के मज़दूर स्वत:स्फूर्त ढंग से इस तरह लड़ सकते हैं तो सोचा जा सकता है कि अगर क्रान्तिकारी विचारधारा से लैस क्रान्तिकारी पार्टी का नेतृत्व हो तो मज़दूर वर्ग कितनी सफल और लम्बी लड़ाइयाँ लड़ सकता है।

– कपिल स्वामी

नारकीय हालात में रहते और काम करते हैं दिल्ली मेट्रो के निर्माण कार्यों में लगे हज़ारों मज़दूर

(पेज 3 से आगे)

इंजीनियरिंग कम्पनियाँ लगी हुई हैं। इन कम्पनियों का उद्देश्य सिर्फ़ लाभ कमाना है, सामाजिक ज़िम्मेदारी से इनका कोई सरोकार नहीं हैं। यही वजह है कि मेट्रो की कार्य-संस्कृति भी सामाजिक सरोकारों से बहुत दूर है। तभी तो मज़दूर के शरीर पर लांचर गिरे, पुल टूटकर मज़दूर को दफ़्ना दे या मज़दूर ज़िन्दा ही मिट्टी में दफ़न हो जाये, मेट्रो निर्माण में लगी कम्पनियों की सेहत पर कोई फर्क नहीं पड़ता। इसका एक उदाहरण लक्ष्मीनगर हादसे की दोषी एफ़कॉन कम्पनी का है क्योंकि लक्ष्मीनगर हादसे के बाद डीएमआरसी ने एफ़कॉन कम्पनी पर 10 लाख का जुर्माना लगाने के साथ ही उसे काली सूची में डाल दिया था। लेकिन फिर भी एफ़कॉन कम्पनी को दूसरे चरण के किसी निर्माण कार्य से अलग नहीं किया गया है।

कैग रपट – भारत के नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक (कैग) की रिपोर्ट में दिल्ली मेट्रो में चल रही कई धाँधलियों पर से पर्दा उठा है। ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने के लिए तरह-तरह के हथकण्डे अपनाये जा रहे हैं जिसका ख़ामियाज़ा आख़िरकार मज़दूर की ज़िन्दगियों को ही उठाना पड़ रहा है। इस रपट के मुख्य बिन्दु निम्न थे :

1. मेट्रो रेल पुल और लाइन बनाने में प्रयुक्त सामानों की गुणवत्ता की जाँच ग़ैर-मान्यताप्राप्त प्रयोगशालाओं में होती है। जाँच के समय डीएमआरसी के अधिकारी भी मौजूद नहीं रहते। 2. रपट में कहा गया कि डीएमआरसी की सीधी जबावदेही न तो केन्द्र सरकार के शहरी विकास मन्त्रालय के प्रति है और न ही साफ़ तौर पर दिल्ली सरकार के प्रति। 3. कैग ने चार ठेकों में घोटाले की आशंका के बावजूद डीएमआरसी की ओर से कोई जाँच न होने पर हैरानी जताई है और कई मामलों में रिकार्ड के रखरखाव की कमी पायी गयी है। 4. लक्ष्मीनगर हादसे की दोषी एफ़कॉन इण्डिया को 10 लाख का जुर्माना लगाने के साथ ही काली सूची में डाल दिया गया था लेकिन दूसरे चरण के काम में एफ़कॉन लगातार काम कर रहा है। 5. मेट्रो ने सरकार से 14 से 354 फीसद अधिक ज़मीन ली थी लाइन बिछाने के लिए, लेकिन वहाँ बना दिये शॉपिंग मॉल और शोरूम ताकि मुनाफ़ा पीटा जा सके।

एक और आरटीआई के जवाब में मेट्रो ने बताया है कि डीएमआरसी का एक माह का शुद्ध मुनाफ़ा 17 करोड़ है। ज़ाहिर है कि दिल्ली मेट्रो स्तरीय परिवहन सुविधा देने के नाम पर अच्छी-ख़ासी कमाई का ज़रिया भी बन गया है। मज़दूरों का खून-पसीना निचोड़ कर बटोरी जा रही इस कमाई में मज़दूरों का कोई हिस्सा नहीं है – इस कमाई से मेट्रो के अफ़सर मौज कर रहे हैं।

दिल्ली मेट्रो की चमकती इमारतों की नींव में मज़दूरों की हड्डियाँ दफ़न हैं। आज मेट्रो के निर्माण कार्यों और अन्य कामों में लगे मज़दूर नारकीय परिस्थितियों में काम कर रहे हैं। लेकिन यह ऐसे ही नहीं चलता रहेगा। मज़दूरों ने आवाज़ उठाना शुरू कर दिया है और उसे लाख कोशिश करके भी दबाया नहीं जा सकता। इतिहास का चक्का कभी थमता नहीं है। आज अगर श्रम पर पूँजी की ताक़तें हावी हैं तो यह संसार का अन्तिम सच क़तई नहीं है। मेहनतकश आबादी यूँ ही ख़ून के आँसू पीते हाथ पर हाथ धरे बैठे नहीं रहेगी। मज़दूर वर्ग का नये सिरे से संगठित होना और अपने अधिकारों के लिए फिर से कमर कस लेना तय ही है।

"अतुलनीय भारत" : जहाँ हर चौथा आदमी भूखा है!

(पेज 1 से आगे)

आज दुनिया में सबसे ज़्यादा भूखे लोग भारत में रहते हैं। देश में लगभग साढ़े इक्कीस करोड़ लोगों को भरपेट भोजन नसीब नहीं हो रहा है। इसके अलावा नीचे की एक भारी आबादी ऐसी है जिसका पेट तो किसी न किसी प्रकार भर जाता है मगर उनके भोजन से पर्याप्त पोषण नहीं मिल पाता। यही वह आबादी है जो फैक्टरियों-कारखानों और खेतों में सबसे खराब परिस्थितियों में सबसे मेहनत वाले काम करती है और झुग्गी-बस्तियों में और कूड़े के ढेर और सड़कों-नालों के किनारे जिन्दगी बसर करती है। कहने की जरूरत नहीं कि भूख, कुपोषण, संक्रामक रोगों, अन्य बीमारियों और काम की अमानवीय स्थितियों के कारण और साथ ही दवा-इलाज के अभाव के कारण इस वर्ग के अधिकतर लोग समय से ही पहले ही दम तोड़ देते हैं। पर्याप्त पोषण की कमी के कारण भारत के लगभग 6 करोड़ बच्चों का वज़न सामान्य से कम है। सुनकर सदमा लग सकता है कि अफ्रीका के कई पिछड़े देशों की हालत भी यहाँ से बेहतर है! दुनिया के कुल कुपोषित बच्चों की एक तिहाई संख्या भारतीय बच्चों की है। देश की 50 प्रतिशत महिलाओं और 80 प्रतिशत बच्चों में खून की कमी है।

डा. वन्दना शिवा का कहना है कि आर्थिक सुधारों ने खाद्य सुरक्षा को अत्यधिक प्रभावित किया है। कारपोरेट खिलाड़ियों के प्रभाव वाली गैर वहनीय कृषि को सरकार बढ़ावा दे रही है जबकि इससे छोटे किसान तबाह हो रहे हैं। उनका कहना हे कि छोटे किसान बड़े-बड़े फार्मों की अपेक्षा अधिक अन्न की पैदावार करते हैं और यदि वे तबाह होते हैं तो वे भुखमरी की कगार पर आ जाएंगे और देश भी भूखा रहेगा।

गाँवों में रहने वाली देश की भारी आबादी का एक बड़ा हिस्सा आज तबाही की कगार पर खड़ा है। पूँजी के तर्क से समझा जा सकता है कि पूँजीवाद में छोटे किसानों की तबाही अनिवार्य है। उदारीकरण की नीतियों ने इसमें और तेजी ला दी है। वहीं दूसरी तरफ यह भी सच है कि खेती के सहारे गरीब किसान अपना निर्वाह नहीं कर सकता। जमीन के छोटे-छोटे टुकड़ों पर खेती करने वालों की संख्या करोड़ों में है जो कहने को जमीन के मालिक हैं लेकिन खेती से उनके परिवार का पेट तक नहीं भरता। छोटे-छोटे टुकड़ों के अलग-अलग मालिकों की संपत्ति होने के कारण योजनाबद्ध ढंग से कृषि कर पाना, सिंचाई, खाद, कीटनाशक आदि की व्यवस्था कर पाना और मशीनों का प्रयोग तथा वैज्ञानिक खेती कर पाना सम्भव नहीं रह जाता। हर किसान अपनी खेती के लिए स्वयं जिम्मेदार होता है और वह किसी समूह का अंग नहीं रह जाता। एक तरफ तो वह सरकार से कोई मदद प्राप्त नहीं कर पाता है वहीं दूसरी तरफ प्राइवेट कम्पनियों के शोषण का शिकार होता है। खेती उसके लिए गले की हड्डी बन जाती है जिसे न तो वह निगल पाता है न उगल पाता है। इसकी तुलना समाजवादी रूस और चीन की सामूहिक और कम्यून खेती से करें तो आश्चर्यजनक अन्तर दिखायी पड़ता है।

सिर्फ भारत ही नहीं बल्कि विश्व स्तर पर हम एक मानव निर्मित अकाल की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं! हर गुजरते दिन के साथ स्थिति और गम्भीर होती जा रही है। देश की तरक्की की सारी मलाई अमीरों द्वारा चट कर ली जा रही है जबकि उत्पादन में सबसे अधिक योगदान करने वाली तीन-चौथाई मेहनतकश आबादी भूख, कुपोषण, और बीमारियों की शिकार बन रही है।

ऐसे में जर्मन कवि बेर्टोल्ट ब्रेष्ट के इन शब्दों को याद करने की ज़रूरत है –

गर थाली आपकी खाली है
तो सोचना होगा
कि खाना कैसे खाओगे
ये आप पर है कि
पलट दो सरकार को उल्टा
जब तक कि खाली पेट नहीं भरता...

– जयपुष्प

'विश्व पूँजीवाद की संरचना एवं कार्यप्रणाली तथा उत्पादन-प्रक्रिया में बदलाव मज़दूर-प्रतिरोध के नये रूपों को जन्म देगा'

पहली अरविन्द स्मृति संगोष्ठी (24 जुलाई 2009)

संगोष्ठी में आधार वक्तव्य देते हुए अभिनव, श्रद्धांजलि गीत प्रस्तुत करते हुए 'विहान' की टोली तथा डा. प्रभु महापात्र अपना वक्तव्य देते हुए

विगत 24 जुलाई को नई दिल्ली स्थित गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान के सभागार में '**भूमण्डलीकरण के दौर में श्रम कानून और मज़दूर वर्ग के प्रतिरोध के नये रूप**' विषय पर आयोजित प्रथम **अरविन्द स्मृति संगोष्ठी** में अधिकांश वक्ताओं ने इस विचार के साथ सहमति ज़ाहिर की कि विश्व पूँजीवाद के असाध्य आर्थिक संकट के आन्तरिक दबाव, विश्व राजनीतिक परिदृश्य में आये बदलावों तथा स्वचालन, सूचना प्रौद्योगिकी एवं अन्य नयी तकनीकों के सहारे अतिलाभ निचोड़ने के नये तौर-तरीकों के विकास के परिणामस्वरूप आज पूँजी की कार्य-प्रणाली और ढाँचे में कई अहम बदलाव आये हैं। ऐसी स्थिति में श्रम के पक्ष को भी प्रतिरोध के नये तौर-तरीके और नयी रणनीति विकसित करनी होगी।

यह संगोष्ठी दिवंगत साथी अरविन्द की स्मृति में उनकी प्रथम पुण्यतिथि के अवसर पर **राहुल फाउण्डेशन** की ओर से आयोजित की गयी थी जिसमें पूर्वी उत्तर प्रदेश, नोएडा, दिल्ली, बिहार और पंजाब के विभिन्न इलाकों से आये मज़दूर और छात्र-युवा मोर्चे के संगठनकर्ताओं-कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त कई गणमान्य बुद्धिजीवियों ने भी हिस्सा लिया। साथी अरविन्द के व्यक्तित्व और कार्यों से वाम प्रगतिशील धारा के अधिकांश बुद्धिजीवी, क्रान्तिकारी वाम धारा के राजनीतिक कार्यकर्ता और मज़दूर संगठनकर्ता परिचित रहे हैं। वे मज़दूर अखबार 'बिगुल' और वाम बौद्धिक पत्रिका 'दायित्वबोध' से जुड़े थे। संगोष्ठी की शुरुआत से पहले राहुल फाउण्डेशन की अध्यक्ष कात्यायनी ने साथी अरविन्द को भावभीनी श्रद्धांजलि देते हुए कहा कि उनका छोटा किन्तु सघन जीवन राजनीतिक कार्यकर्ताओं के लिए प्रेरणा का अक्षय-स्रोत है। वे जनता के लिए जिये और फिर जन-मुक्ति के लिए ही अपना जीवन होम कर दिया। छात्र-युवा आन्दोलन में लगभग डेढ़ दशक तक सक्रिय भूमिका निभाने के बाद मज़दूरों को संगठित करने के काम में वे लगभग एक दशक से लगे हुए थे। दिल्ली और नोएडा से लेकर पूर्वी उत्तर प्रदेश तक कई मज़दूर संघर्षों में उन्होंने अग्रणी भूमिका निभाई थी। ऐसे साथी की स्मृति से प्रेरणा और विचारों से दिशा लेकर जन-मुक्ति के रास्ते पर आगे बढ़ते जाना ही उसे याद करने का सही तरीका हो सकता है।

इसके बाद दिल्ली विश्वविद्यालय के '**विहान सांस्कृतिक मंच**' के साथियों ने साथी अरविन्द की स्मृति में शहीदों का गीत प्रस्तुत किया और फिर संगोष्ठी की शुरुआत हुई।

विषय-प्रवर्तन

संगोष्ठी के विषय का संक्षिप्त परिचय देते हुए संचालक **सत्यम** ने बताया कि पिछली सदी के लगभग अन्तिम दो दशकों के दौरान वित्तीय पूँजी के वैश्विक नियंत्रण एवं वर्चस्व के नये रूप सामने आये हैं, पूँजी की कार्यप्रणाली में व्यापक और सूक्ष्म बदलाव आये हैं और अतिलाभ निचोड़ने की नयी प्रविधियाँ विकसित हुई हैं। अतिलाभ निचोड़ने की प्रक्रिया से एकत्र पूँजी के अम्बार ने विगत लम्बे समय से जारी पूँजीवाद के ढाँचागत संकट और दीर्घकालिक मन्दी को नयी सदी में एक ऐसे विस्फोटक मुक़ाम तक पहुँचा दिया है, जिसका साक्षी इतिहास पहले कभी नहीं हुआ था। इस स्थिति ने, समाजवाद के बीसवीं शताब्दी के प्रयोगों की पराजय के बाद पूँजीवाद की अजेयता और अमरत्व का जो मिथक गढ़ा जा रहा था, उसे चकनाचूर कर दिया है। लेकिन पूँजी का भूमण्डलीय तंत्र स्वत: नहीं टूटेगा, यह श्रम की शक्तियों के सुनियोजित प्रयासों से ही टूटेगा। आज का विचारणीय प्रश्न यह है कि मज़दूर वर्ग, अपने ऐतिहासिक मिशन के लिए आगे बढ़ पाना तो दूर, अपनी फौरी और आंशिक हितों एवं माँगों की लड़ाई को भी संगठित नहीं कर पा रहा है। छिटपुट मुठभेड़ों, स्वत:स्फूर्त आन्दोलनों और आत्मरक्षात्मक संघर्षों से आगे बढ़कर वह ज्यादा कुछ भी नहीं कर पा रहा है। इसलिए, आज की बुनियादी चुनौती यह है कि भूमण्डलीकरण के दौर में पूरे विश्व पूँजीवादी तंत्र के ढाँचे और क्रियाविधि में आये बुनियादी बदलावों को देखते हुए मज़दूर वर्ग के प्रतिरोध के रूपों और रणनीतियों में बदलाव के प्रश्न पर गहराई और व्यापकता के साथ विचार किया जाये। इस सन्दर्भ में हमें बड़े-बड़े कारख़ानों में मज़दूर-आबादी के संकेन्द्रण के बजाय छोटे-छोटे कारख़ानों- आबादियों में मज़दूर आबादी को बिखेर देने वाली नयी विकेन्द्रित उत्पादन प्रक्रिया पर, मज़दूर आबादी के अनौपचारिकीकरण के विविध रूपों पर तथा श्रम कानूनों और उनको लागू करने वाले तंत्र की बढ़ती निष्प्रभाविता पर गहराई से विचार करना होगा। हमें बहुसंख्यक ठेका, दिहाड़ी व अनियमित मज़दूरों से परम्परागत ट्रेड यूनियनों की दूरी और नियमित मज़दूरों की एक अत्यन्त छोटी आबादी तक उनके सिकुड़ जाने की स्थिति पर सोचते हुए बहुसंख्यक असंगठित मज़दूरों को संगठित करने के नये रूपों पर विचार करना होगा। साथ ही, हमें उत्तर-औपनिवेशिक समाजों में पूँजीवादी विकास की आम प्रवृत्ति पर सोचते हुए इन देशों में सर्वहाराकरण और बढ़ती ग्रामीण सर्वहारा आबादी की भूमिका का भी पुनर्मूल्यांकन करना होगा। हमारे विचार-विमर्श का एक पहलू यदि मज़दूर आन्दोलन के आर्थिक और फौरी संघर्षों के स्वरूप से जुड़ा है तो दूसरा पहलू उसके पूँजीवाद-विरोधी ऐतिहासिक मिशन को पूरा करने वाले दूरगामी राजनीतिक संघर्ष की नयी रणनीति के सन्धान से जुड़ा है। यह संगोष्ठी इस विषय पर सार्थक संवाद की एक शुरुआत भर है।

आधार-वक्तव्य

इस विषय पर अपना लम्बा आधार-वक्तव्य प्रस्तुत करते हुए 'आह्वान' पत्रिका के सम्पादक और छात्रों-युवाओं-मज़दूरों के बीच काम करने वाले राजनीतिक कार्यकर्ता **अभिनव** ने सबसे पहले भूमण्डलीकरण के दौर में पूँजीवाद की कार्यप्रणाली में आये बदलावों की सिलसिलेवार चर्चा की। उन्होंने कहा कि हम अभी भी साम्राज्यवाद के ही युग में जी रहे हैं, लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद वित्तीय पूँजी का प्रभुत्व अभूतपूर्व ढंग से बढ़ा है तथा पूँजी का परजीवी, अनुत्पादक, परभक्षी और ह्रासोन्मुख चरित्र सर्वथा नये रूप में सामने आया है। आज पूरी दुनिया की पूँजी का लगभग 90 प्रतिशत भाग वित्तीय और सट्टा पूँजी का है, जो शेयर बाजार में, सूदखोरी में तथा विज्ञापन, मनोरंजन उद्योग आदि जैसे अनुत्पादक क्षेत्रों में लगा हुआ है। ऐसी स्थिति लेनिन के समय में नहीं थी। कहने की आवश्यकता नहीं कि साम्राज्यवाद के युग के लिए लेनिन ने सर्वहारा क्रान्ति की रणनीति एवं आम रणकौशल का जो फ्रेमवर्क दिया, वह बुनियादी तौर पर आज भी प्रासंगिक है, पर विगत लगभग आधी सदी के दौरान आये बदलावों को देखने और उक्त फ्रेमवर्क की तफ़सीलों में सम्भावित कई बुनियादी बदलावों पर विचार करने की चुनौती से हम मुँह नहीं मोड़ सकते। मार्क्सवाद सिद्धान्तों के खाँचे में सच्चाइयों को फिट करने की कोशिश के बजाय, हमें तथ्यों से सत्य का निगमन करने की शिक्षा देता है।

अभिनव ने विषय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विहगावलोकन करते हुए बताया कि जहाँ तक विश्व पूँजीवाद की आर्थिक क्रिया-विधि का सवाल है, दूसरे विश्वयुद्ध के बाद के दौर की दो बड़ी अभिलाक्षणिकताएँ रेखांकित की जा सकती हैं। पहला था "कल्याणकारी" राज्य की कीन्सवादी अवधारणा का अमली रूप और दूसरा था 'फोर्डिस्ट मास प्रोडक्शन।' ये परिघटनाएँ युद्ध के पहले से मौजूद थीं, लेकिन युद्ध के बाद की दुनिया में ये प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में सामने आयीं। यह अमेरिका, और विश्व पूँजीवाद का भी, तथाकथित "स्वर्णिम युग" था। लेकिन जल्दी ही यह "स्वर्णिम युग" पराभव की ढलान पर फिसलता दिखा और 1970 के दशक में पूँजीवादी "कल्याणकारी" राज्य और 'फोर्डिस्ट मास प्रोडक्शन' के क्षरण-विघटन की प्रक्रिया शुरू होकर लगातार तेज होती चली गयी। यह समय ब्रेट्टनवुड्स समझौता और 'डॉलर-गोल्ड स्टैण्डर्ड' के टूटने का समय था। इसी दौर में ब्रेट्टनवुड्स संस्थाओं की भूमिका का पुनर्गठन करते हुए उन बुनियादी नीतियों को विकसित करने की शुरुआत हुई, जिन्हें आज भूमण्डलीकरण की नीतियाँ कहा जा रहा है। उस समय तक "कल्याणकारी राज्य" की नीतियाँ धीरे-धीरे पूँजी के लिए अनुपयोगी और अवरोधक बनने लगी थीं क्योंकि वे पूँजी के स्वतंत्र प्रवाह में बाधक बन रही थीं, जो पूँजी संचय की दर को बढ़ाने के लिए जरूरी था। 1980 के दशक में पहले लातिन अमेरिकी देशों में और फिर अन्य पिछड़े पूँजीवादी देशों में निजीकरण-उदारीकरण आदि भूमण्डलीकरण की ट्रेडमार्क नीतियों पर अमल शुरू हुआ। 1990 का दशक इन नीतियों पर निर्बाध विश्वव्यापी अमल का काल था और अब नयी सदी के पहले दशक में हम 1930 के दशक की महामन्दी के बाद के सबसे बड़े पूँजीवादी संकट के गवाह बन रहे हैं।

अभिनव ने बताया कि पूँजीवादी नीतियों के

(पेज 7 पर जारी)

रपट

पहली अरविन्द स्मृति संगोष्ठी

(पेज 6 से आगे)

इन बदलावों और उनकी परिणतियों के अतिरिक्त, दुनिया के पूँजीपतियों के, कुछ अपने नकारात्मक अनुभव भी रहे हैं, जिन्होंने अधिशेष निचोड़ने और शासन चलाने की नीतियों में बदलाव लाने के लिए उन्हें विवश करने में अहम भूमिका निभाई। बीसवीं शताब्दी में रूसी अक्टूबर क्रान्ति, चीन की नवजनवादी क्रान्ति और एशिया-अफ्रीका के तूफ़ानी राष्ट्रीय मुक्तियुद्धों ने विश्व पूँजीवादी तंत्र को झकझोरकर रख दिया था। हालाँकि संशोधनवादियों के सत्तासीन होने के बाद, रूस और चीन के अन्दरूनी वर्ग संघर्ष में सर्वहारा वर्ग की पराजय हो चुकी थी और इन देशों में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना हो गयी थी लेकिन विश्व पूँजीवाद के चौधरी जानते थे कि जनक्रान्तियों का खतरा अभी टला नहीं था। इसलिए उन्होंने ऐसी नयी रणनीतियाँ ईजाद कीं जिनसे विश्व स्तर पर मज़दूर आन्दोलन को कमज़ोर बनाया जा सके। ज्यादा से ज्यादा सस्ती दरों पर श्रम शक्ति निचोड़ने के आर्थिक उद्देश्य के अतिरिक्त, उपरोक्त राजनीतिक उद्देश्य की भी 'फोर्डिस्ट मास प्रोडक्शन असेम्बली लाइन' को तोड़ने की रणनीति के पीछे एक अहम भूमिका थी। पूँजी के भूमण्डलीकरण ने उसे सस्ते श्रम को निचोड़ने और कच्चे माल को सस्ती से सस्ती दरों पर हड़पने के लिए पूरी दुनिया में निर्बाध विचरण की आजादी दे दी। 1990 के दशक में 'विखण्डित भूमण्डलीय असेम्बली लाइन' की परिघटना एक प्रतिनिधि प्रवृत्ति के रूप में सामने आयी। बड़ी औद्योगिक इकाइयों को छोटी-छोटी औद्योगिक इकाइयों में तोड़कर दूर-दूर (कभी-कभी तो कई देशों तक में) बिखरा दिया जाने लगा। यह प्रवृत्ति अभी भी लगातार जारी है। कुछ ऊर्ध्वस्थ पूँजीगत माल उत्पादक उद्योगों (ओवरहेड कैपिटल गुड्स इण्डस्ट्रीज़) को छोड़कर, सभी जगह काम की काण्ट्रैक्टिंग, सबकाण्ट्रैक्टिंग और आउटसोर्सिंग एक आम प्रवृत्ति के रूप में देखने को मिलती है।

पिछड़े पूँजीवादी देशों में निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों की ओर संक्रमण की आन्तरिक गतिकी की चर्चा करते हुए अभिनव ने कहा कि राजनीतिक आजादी मिलने के बाद उत्तर-औपनिवेशिक समाजों में राष्ट्रीयता का सवाल, जिस हद तक बुर्जुआ दायरे में हल हो सकता था, उस हद तक हल हो चुका था। इनमें से कुछ देशों के नये शासक बुर्जुआ वर्ग ने साम्राज्यवाद पर सापेक्षत: अधिक निर्भर रहते हुए पूँजीवादी विकास का रास्ता पकड़ा, जबकि कुछ अन्य देशों के बुर्जुआ वर्ग ने (साम्राज्यवादी देशों की प्रतिस्पर्द्धा का अधिक कुशलतापूर्वक लाभ उठाते हुए और आयात-प्रतिस्थापन औद्योगीकरण का रास्ता अपनाते हुए) सापेक्षत: अधिक स्वतंत्र पूँजीवादी विकास का रास्ता पकड़ा। भारत को उक्त दूसरी श्रेणी में रखा जा सकता है। 1980 के दशक में इन उत्तर-औपनिवेशिक समाजों में भूमण्डलीकरण की नीतियों का सूत्रपात हो चुका था। पूँजी के भूमण्डलीकरण के साथ ही राष्ट्र-राज्यों की मुख्य भूमिका देश के सस्ते श्रम के प्रबन्धन और नियंत्रण करने मात्र की तथा विदेशी पूँजी को ज्यादा से ज्यादा अनुकूल और लचीला श्रम-परिवेश मुहैया कराने की रह गयी थी। देश के प्राकृतिक और मानव संसाधनों की लूट में अब देशी पूँजी और विदेशी पूँजी का सुस्पष्ट और पहले की अपेक्षा अत्यधिक घर्षणमुक्त सहकार-सम्बन्ध कायम हो चुका था।

भूमण्डलीकरण की नीतियों के चलते मज़दूरों की भारी आबादी अपनी नौकरियों से हाथ धो बैठी। जिन थोड़े से मज़दूरों की नौकरियाँ बची थी, उनमें से भी अधिकांश को 'कैजुअलाइजेशन', 'काण्ट्रैक्टिंग' और 'सबकाण्ट्रैक्टिंग' की प्रक्रिया के द्वारा अनिश्चतता और बदहाली के भँवर में लगातार धकेलते जाने का सिलसिला चलता रहा। जैसाकि श्रम मामलों के विशेषज्ञ इतिहासकार जान ब्रेमन ने इंगित किया है, 1991 के बाद के दौर में, स्थायी मज़दूर कुल मज़दूर आबादी का एक छोटा-सा सुविधासम्पन्न हिस्सा मात्र बनकर रह गया था। एक आकलन के अनुसार, भारत की कुल मज़दूर आबादी का 93 प्रतिशत हिस्सा अनौपचारिक क्षेत्र में काम करता है। इस अनौपचारिक क्षेत्र का बड़ा संघटक हिस्सा उन स्वच्छन्द ('फुटलूज़') मज़दूरों का है, जो कभी वेण्डर, हॉकर या लेबर चौराहे के दिहाड़ी मज़दूर के रूप में काम करते हैं तो कभी किसी फैक्टरी में काम करने लगते हैं। इन मज़दूरों को किसी एक कार्यस्थल पर पकड़ पाना मुश्किल होता है। अनौपचारिक क्षेत्र का दूसरा संघटक हिस्सा उन मज़दूरों का है जो छोटे वर्कशॉपों में काम करते हैं, या जो अपने ही परिवारीजनों के श्रम के बूते ऐसे वर्कशॉप चलाते हैं (यानी बाहर से मज़दूर नहीं रखते)। इसी श्रेणी में वे भी शामिल हैं जो पीसरेट पर काम करते हैं, या घर पर कुछ ऐसी प्रणाली के अन्तर्गत काम करते हैं, जो काफी हद तक मध्ययुगीन 'पुटिंग आउट सिस्टम' से मिलती-जुलती होती है। इसके अतिरिक्त मज़दूरों का एक ऐसा भी हिस्सा है, जो प्रत्यक्षत: 'पूँजी के मुख्य परिपथ' में नहीं होता है, उसका अस्तित्व सापेक्षत: स्वायत्त होता है और काफी हद तक वह 'जीवन-निर्वाह अर्थव्यवस्था' में जीता है।

अभिनव ने कल्याण सान्याल और राजेश भट्टाचार्य जैसे उन अकादमीशियनों के दृष्टिकोण को भ्रामक और निम्न बुर्जुआ पूर्वाग्रहों से युक्त बताया जो भाड़े पर उजरती मज़दूर रखकर छोटे वर्कशॉप चलाने वाले छोटे उत्पादकों को अनौपचारिक मज़दूर वर्ग की श्रेणी में रखते हैं और उनमें बड़ी पूँजी के हमले का प्रतिरोध करने की सर्वाधिक सम्भावना देखते हैं। निश्चय ही इन छोटे उत्पादकों का बड़े पूँजीपतियों के साथ अन्तरविरोध होता है, पर इनका भी बड़ा हिस्सा बड़े पूँजीपतियों द्वारा सहयोजित कर लिया जाता है। इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि मज़दूरों से अधिशेष निचोड़ने वाला यह वर्ग किसी भी तरह से मज़दूर वर्ग के संघर्ष का भागीदार नहीं बन सकता।

अभिनव ने इस तथ्य को भी रेखांकित किया कि अनौपचारिक मज़दूर अनौपचारिक क्षेत्र के अतिरिक्त औपचारिक क्षेत्र में भी काम करता है और वहाँ भी उसकी प्रतिशत भागीदारी बढ़ती जा रही है। यह अनौपचारिक मज़दूर कुल मज़दूर आबादी का 93 प्रतिशत है। रूपवादी पहुँच-पद्धति से मुक्त होकर अन्तर्वस्तु को देखने पर पता चलता है कि आज के अनौपचारिक मज़दूर का बड़ा हिस्सा 30-40 वर्षों पहले के उस असंगठित मज़दूर से सर्वथा भिन्न है जो या तो लेबर चौक की दिहाड़ी करता था, किसी छोटे-मोटे वर्कशॉप (जो किसी बड़े कारख़ाने का सहायक अंग न होकर सीधे किसी उपभोक्ता सामग्री का उत्पादन करता था) में काम करता था अथवा करघा या कोल्हू या अपने घरेलू श्रम पर आधारित वर्कशॉप चलाता था। यह अनौपचारिक मज़दूर ज़्यादातर किसी छोटे-मोटे वर्कशॉप में काम करते हुए या किसी आधुनिक कारख़ाने में या कंस्ट्रक्शन कम्पनी में ठेका, दिहाड़ी, अस्थायी या कैजुअल मज़दूर के रूप में काम करते हुए बड़े पैमाने के पूँजीवादी उत्पादन की प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है, यह उन्नत तकनोलॉजी के इस्तेमाल में सक्षम है और बहुधन्धी कुशल मज़दूर है (वैसे भी तकनीकी प्रगति ने कुशल और अकुशल मज़दूर के बीच की विभाजक रेखा काफी धुँधली कर दी है), इसकी चेतना उन्नत एवं आधुनिक है और प्रत्यक्षत: नहीं दिखाई पड़ते हुए भी यह अपने वर्ग बन्धुओं की एक बहुत बड़ी आबादी के साथ, वस्तुगत तौर पर, घनिष्ठता के साथ जुड़ा हुआ है। जो संगठित संशोधनवादी और बुर्जुआ ट्रेड यूनियनें हैं, उनका 93 प्रतिशत मज़दूरों की इस आबादी से कुछ भी लेना-देना नहीं है। बस रस्मी तौर पर कभी-कभार इनके बीच भी कुछ कर दिया जाता है या कुछ साइनबोर्ड टाँग दिये जाते हैं। जो सच्ची क्रान्तिकारी वाम शक्तियाँ हैं, उन्हें इसी तथाकथित "असंगठित" मज़दूर आबादी को संगठित करने पर अपने को मुख्यत: केन्द्रित करना होगा। जो संगठित औपचारिक मज़दूर हैं, उनका एक भाग तो ऐसा है जो 'श्रमिक कुलीन जमात' बन चुका है और क्रान्तिकारी सामाजिक बदलाव से उसका कुछ भी लेना-देना नहीं है। इनका जो शेष भाग है, जाहिर है कि उसे हम संशोधनवादी ट्रेड यूनियनों के रहमोकरम पर नहीं छोड़ सकते। लेकिन आज के हालात में, एक बड़ी ताकत जुटाये बिना क्रान्तिकारी शक्तियाँ औपचारिक क्षेत्र के औपचारिक मज़दूरों के बीच नहीं घुस सकती, जहाँ संशोधनवादियों और बुर्जुआओं की पैठ-पकड़ बहुत मजबूत है। इसके लिए भी जरूरी यह है कि पहले हम अनौपचारिक मज़दूरों को संगठित करने पर जोर दें।

अपने आधार-वक्तव्य के अन्तिम भाग में अभिनव ने अनौपचारिक मज़दूरों को संगठित करने की चुनौतियों-समस्याओं को रेखांकित किया। ये अनौपचारिक मज़दूर चेतनशील, जागरूक और कुशल हैं, लेकिन किसी एक कारख़ाना स्थल पर इन्हें हमेशा नहीं पाया जा सकता। इसलिए इन्हें कारख़ानों के बजाय इनके रिहाइशी इलाकों में पकड़ना होगा। काम ये चाहे जहाँ करें, इनकी समस्याएँ और माँगें आज सर्वत्र एक ही हैं। अत: उन माँगों को लेकर इन्हें संगठित करने की प्रक्रिया मज़दूर बस्तियों से शुरू की जा सकती है। इनके काम की स्थितियों से जुड़ी माँगों के अतिरिक्त हमें इनके आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि ऐसी माँगों को भी उठाना होगा जो राजनीतिक अधिकार की माँगें हैं और सीधे सत्ता को कठघरे में खड़ा करती हैं। इन मज़दूरों को जागृत-संगठित करने का शुरुआती दौर लम्बा और समस्याओं-परेशानियों भरा हो सकता है, लेकिन इनके जीवन और काम की स्थितियाँ ऐसी हैं कि (एक कारख़ाने से नहीं बँधे होने के कारण) इनके भीतर 'पेशागत संकुचित वृत्ति' का आधार कमजोर होता है और एक मालिक के बजाय मालिक वर्ग से लड़ने के लिए ये ज़्यादा मज़बूती से उठ खड़े होंगे। इन मज़दूरों को इलाकाई और पेशागत आधार पर बनने वाली यूनियनों में संगठित करना होगा। इन मज़दूरों में इस बात की प्रचुर सम्भावना मौजूद है कि ये मज़दूर वर्ग का नया नेतृत्व पैदा कर सकें।

वाद-विवाद-संवाद

बहस की शुरुआत करते हुए दिल्ली विश्वविद्यालय में इतिहास विभाग के प्राध्यापक और श्रम इतिहास के विशेषज्ञ **डा. प्रभु महापात्र** ने आधार-वक्तव्य के द्वन्द्वात्मक विवेचन की प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि मार्क्स और लेनिन ने हमें सिखाया है कि समस्या की द्वन्द्वात्मक विवेचना करके कमज़ोरी को मज़बूती में बदला जा सकता है, लेकिन भारतीय मार्क्सवादियों में इस तरह सोचने की कमी रही है। आधार वक्तव्य में यह चर्चा की गयी कि मज़दूर वर्ग की 93 प्रतिशत सबसे बिखरी और कमज़ोर आबादी को किस तरह क्रान्ति की मुख्य ताक़त बनाया जा सकता है। आज यह एक सपना लग सकता है, लेकिन क्रान्ति के लिए सपना देखना ज़रूरी है। भूमण्डलीकरण के दौर का एक बड़ा असर यह हुआ है कि बहुत से लोगों के सपने मर गये हैं या छीन लिये गये हैं।

डा. महापात्र का कहना था कि यह एक ग़लत अवधारणा है कि श्रम कानून मज़दूरों के अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करते हैं। ज्यादातर मामलों में श्रम कानून, राज्य को बीच में लाकर, श्रम और पूँजी के बीच के अन्तरविरोध को धुँधला करने का काम करते रहे हैं। राज्य पूँजी की अन्तर्निहित पक्षधरता के बावजूद, आभासी तौर पर तटस्थता का दिखावा करता रहा है। श्रम कानून पूँजीवाद के एक खास दौर में सामने आये। 19वीं सदी के अन्त में पहले इंग्लैण्ड, शेष यूरोप और अमेरिका में श्रम कानूनों का बनना शुरू हुआ। भारत में श्रम कानूनों का इतिहास बहुत छोटा – करीब 60-70 वर्षों पुराना है। 'ओपन एण्डेड एम्प्लायमेण्ट काण्ट्रैक्ट' के साथ श्रम कानून का निर्माण एवं अमल शुरू हुआ। इसका मूल कारण यह था कि राज्यसत्ता कुछ चीजों का नियंत्रण अपने हाथ में लेना चाहती थी, ताकि पूँजीवाद ठीक से चलता रहे। श्रम और पूँजी के सम्बन्धों को 'रेग्यूलेट' करना व्यवस्था के हित में था। 1970 के दशक में स्थिति बदलने लगी। उत्पादन के चरित्र में बदलाव के साथ ही 'काण्ट्रैक्ट' के चरित्र में भी बदलाव आने लगा। अब यह सामूहिक और 'ओपन एण्डेड' न होकर व्यक्तिगत मज़दूर के स्तर पर होने लगा। इसके साथ अधिकांश देशों में श्रम कानूनों में बदलाव और उनकी भूमिका के संकुचन की प्रक्रिया शुरू हो गयी। अब पूँजीवादी संकट के नये गम्भीर दौर में एक बार फिर कुछ कीन्सवादी नुस्खों को आज़माने के साथ ही श्रम और पूँजी के सम्बन्धों को 'रेग्यूलेट' करने के लिए श्रम कानूनों को प्रभावी बनाने की ज़रूरत महसूस की जा रही है। 'डीरेग्यूलेशन' से 'रीरेग्यूलेशन' की ओर 'शिफ़्ट' की बात की जा रही है। भारत में भी सत्ता नीति-परिवर्तन कर रही है और इस सन्दर्भ में दो-तीन कमीशन बैठाये जा चुके हैं। असंगठित क्षेत्र के उपक्रमों का राष्ट्रीय आयोग (अर्जुन सेनगुप्ता कमेटी) वास्तव में असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों का आयोग बन गया। इस आयोग की रिपोर्ट के अनुसार कुल 43.4 करोड़ मज़दूरों में से 93 प्रतिशत अनौपचारिक मज़दूर हैं। इनकी परिभाषा आयोग ने यह दी कि इन्हें राज्य या नियोक्ता की ओर से किसी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा नहीं हासिल है। लेकिन इस रिपोर्ट का दूसरा पहलू, जो बुनियादी है, वह यह है कि इसने मज़दूरों की सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा का सारा दायित्व राज्य पर डालकर पूँजीपतियों को खुला हाथ दे दिया है कि वे उन मज़दूरों से अतिलाभ निचोड़ते रहें और इस प्रक्रिया के दौरान श्रम और पूँजी का अन्तरविरोध भी (राज्य के हस्तक्षेप के चलते) तीखा न हो पाये।

डा. महापात्र ने रवि श्रीवास्तव कमेटी की रिपोर्ट के हवाले से इस तथ्य की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया कि ग्रामीण इलाकों के कामगारों की आय का 50 प्रतिशत से भी कम हिस्सा अब खेती से आता है। चर्चित नन्दीग्राम और आसपास के इलाके के करीब 6 लाख लोग खिदिरपुर के रेडिमेड कपड़ा उद्योग में काम करते हैं। यानी ग्रामीण मज़दूरों का बड़ा हिस्सा भी वास्तव में औद्योगिक उत्पादन तंत्र से जुड़ चुका है। श्रम के अदृश्यीकरण के बौद्धिक विभ्रम के बारे में डा. महापात्र का कहना था कि यह तथ्यत: गलत है। चूँकि मज़दूर का सार्वजनिक जीवन में कोई दखल नहीं है, इसलिए मध्य वर्ग को वह दिखता नहीं है। 'कुलीन मज़दूर' (लेबर एरिस्टोक्रेसी) शब्दावली के बारे में उनका कहना था कि हमें इसका सावधानीपूर्वक इस्तेमाल करना चाहिए और सभी संगठित, स्थायी मज़दूरों को कुलीन मज़दूर नहीं मान लेना चाहिए। मज़दूर बस्तियों में जाकर अनियमित-अनौपचारिक मज़दूरों को इलाकाई और पेशागत आधार पर संगठित करने के विचार को महत्वपूर्ण और नया बताते हुए उन्होंने उसका स्वागत किया।

भा.क.पा. (मा.ले.) (नया सर्वहारा) के सेक्रेटरी **शिवमंगल सिद्धान्तकर** ने कहा कि आज साम्राज्यवाद के नये दौर और नयी सर्वहारा क्रान्ति पर बात करना जरूरी है। हमें भूमण्डलीकरण के दौर में मज़दूर आन्दोलन के सामने उपस्थित संकटों से लड़ने के लिए नये औज़ारों पर गम्भीरता से सोचने की जरूरत है। साम्राज्यवाद के इस नये दौर ने एक ओर मेहनतकशों को तबाह किया है तो दूसरी ओर लड़ने के नये औज़ार और आधार

(पेज 8 पर जारी)

रपट

पहली अरविन्द स्मृति संगोष्ठी

(पेज 7 से आगे)

भी दिये हैं। लेकिन 'सेज' के विरुद्ध आज होने वाले संघर्ष ज्यादातर क्रान्तिकारी न होकर सुधारवादी प्रकृति के ही हैं। ऐसे प्रश्नों पर ध्यान देना होगा। नयी सर्वहारा क्रान्ति का नया नेतृत्व आज वह नया सर्वहारा ही कर सकता है, जो उत्पादक शक्तियों के अभूतपूर्व विकास और तकनीकी प्रगति के बाद अस्तित्व में आया है।

साहिबाबाद से आये **'हमारी सोच'** पत्रिका के सम्पादक **सुभाष शर्मा** ने कहा कि संघर्ष के नये रूपों की खोज का मतलब सिर्फ हड़ताल या 'टूल डाउन' आदि के विकल्प तलाशने से नहीं होना चाहिए। आर्थिक संघर्ष और ट्रेड यूनियन आन्दोलन तक ही मज़दूर वर्ग के प्रतिरोध की बात सीमित नहीं है। लेकिन साथ ही उनका यह भी कहना था कि मज़दूर वर्ग के प्रतिरोध के नये रूप स्वयं उसके आन्दोलन के दौरान पैदा होंगे। हरावल शक्तियाँ प्रतिरोध के नये रूपों के बारे में न तो पहले से भविष्यवाणी कर सकती हैं, न ही उनके बारे में मज़दूर वर्ग को बता सकती हैं। साथ ही, ऐसा भी नहीं है कि भूमण्डलीकरण के दौर में बहुत कुछ बदल गया है। संगठित और असंगठित मज़दूर के बीच का अन्तर पहले भी था। ट्रेड यूनियन संघर्ष के जो रूप 'कल्याणकारी राज्य' के दौर में विकसित हुए और जिन्हें संशोधनवादी नेतृत्व ने अपना एकमात्र काम बना लिया, वे अब निष्प्राण हो चुके हैं। अत: नये रूप तो पैदा होंगे ही। हमें अंतर्वस्तु के प्रश्न पर भी सोचना होगा। भूमण्डलीकरण के दौर में मज़दूर वर्ग के विखण्डन के साथ उसके एकत्रीकरण की प्रक्रिया भी जारी है। आज मज़दूर जहाँ कहीं भी लड़ रहा है, वह संशोधनवादियों से अलग संगठित होने की कोशिश कर रहा है। हमारा दायित्व है कि हम उनकी राजनीतिक सचेतनता बढ़ाने का काम करें। आज की एक अभूतपूर्व परिस्थिति यह है कि विगत 30-40 वर्षों से मज़दूर वर्ग बिना अपनी किसी क्रान्तिकारी पार्टी के संघर्ष कर रहा है। उसे अपनी क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने का अहसास कराना बेहद जरूरी है।

इंकलाबी मज़दूर केन्द्र (फरीदाबाद) के **नागेन्द्र** ने कहा कि वर्तमान संकट का दौर सर्वहारा क्रान्ति के नये संस्करणों का दौर है। स्थिति बहुत उलझी हुई है, पुराने सूत्र हमारा मार्गदर्शन नहीं कर पा रहे हैं और आन्दोलन के पुराने रूप बहुत काम नहीं आ रहे हैं। आज वर्गीय आन्दोलन के बजाय स्त्री, पर्यावरण आदि मुद्दों पर आन्दोलन की पलायनवादी प्रवृत्ति बढ़ रही है। उन्होंने इस आकलन को अतिरंजनापूर्ण बताया कि असेम्बली लाइन अब रह नहीं गयी है। उत्पादन अभी भी असेम्बली लाइन पर ही होता है। उनका कहना था कि आज भी बड़े पैमाने के उद्योगों का संगठित सर्वहारा ही नेतृत्वकारी भूमिका निभायेगा और संगठित सर्वहारा लड़ाई की मुख्य ताकत होगा। प्रत्यक्ष उत्पादन के क्षेत्र की लड़ाइयाँ ही वर्ग संघर्ष को आगे बढ़ा सकती हैं। रिहाइशी इलाकों में स्वास्थ्य-सफाई आदि की लड़ाइयाँ उपभोग के मुद्दों पर केन्द्रित होती हैं। 1991 के बाद ट्रेड यूनियन आन्दोलन में अर्थवाद का आधार कमज़ोर पड़ा है। आज आर्थिक मुद्दों पर भी आन्दोलन शुरू करते ही मज़दूर का सामना पुलिस, प्रशासन, न्यायपालिका सहित पूरे वर्ग की सत्ता की ताकत से होता है। नागेन्द्र ने एक-एक कारख़ाने के आन्दोलन की सफलता की सम्भावना कम होने के तथ्य को स्वीकारते हुए इलाकेवार, ट्रेडवार संगठन बनाने की ज़रूरत का समर्थन किया।

पंजाब से आये मज़दूर संगठनकर्ता और **'प्रतिबद्ध'** पत्रिका के सम्पादक **सुखविन्दर** ने कहा कि भूमण्डलीकरण ने वैश्विक स्तर पर मज़दूरों की एकजुटता की नयी ज़मीन तैयार की है। असेम्बली लाइन बिखरा दी गयी है, लेकिन है वह असेम्बली लाइन ही। जहाँ तक छोटे-बड़े उद्योगों का सवाल है, अलग-अलग इलाकों में स्थितियाँ अलग-अलग हैं। कुछ इलाकों में बड़े उद्योगों के कम होने का ट्रेण्ड यदि है, तो पंजाब जैसे इलाके में बहुत से बड़े उद्योग लग रहे हैं, जिसमें 5 से 15 हजार तक मज़दूर काम कर रहे हैं। पर मुख्य बात यह है कि इन मज़दूरों का अधिकतम हिस्सा भी छोटे उद्योगों की ही तरह अनौपचारिक मज़दूर है - यानी अस्थायी, दिहाड़ी या ठेका मज़दूर है जिसे न्यूनतम मज़दूरी तक नहीं मिलती और कोई भी सामाजिक सुरक्षा हासिल नहीं होती। आज की मुख्य विशिष्टता यह है कि मज़दूरों को एक शोषक नहीं बल्कि पूरा शोषक वर्ग अपने दुश्मन के रूप में नजर आ रहा है। लुधियाना में पिछले 3-4 वर्षों से मज़दूरों के जुझारू आन्दोलन उठते रहे हैं, समस्या नेतृत्व की है, मनोगत ताकतों की है। बीसवीं सदी की सर्वहारा क्रान्तियों की पराजय से उत्पन्न हालात का नयी क्रान्तिकारी भरती और तैयारी की प्रक्रिया पर जो असर पड़ा, वह अभी भी जारी है। साथ ही क्रान्तिकारी आन्दोलन में मौजूद भ्रामक प्रवृत्तियों और कठमुल्ला सोच का भी गम्भीर दुष्प्रभाव पड़ रहा है। इनसे छुटकारा पाना जरूरी है। मज़दूर वर्ग को आर्थिक और फौरी राजनीतिक माँगों पर संगठित करने के अतिरिक्त उसके ऐतिहासिक मिशन से भी परिचित कराना होगा।

छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा के **शेख अंसार** ने बताया कि उनके संगठन का ज़ोर शुरू से ही इलाकाई पैमाने पर संघर्ष संगठित करने पर और ट्रेड यूनियनों में मज़दूरों को पेशागत आधार पर संगठित करने पर था। उन्होंने अपने अनुभवों के हवाले से बताया कि मज़दूर लड़ने को तैयार है। यदि आज की परिस्थितियों की सही समझ से लैस क्रान्तिकारी ताकतें मज़दूरों के बीच जायेंगी, तो वे फिर से उठ खड़े होंगे। शंकर गुहा नियोगी ने अपने अन्तिम सन्देश में स्पष्ट कहा था कि संशोधनवाद, अर्थवाद और "वामपंथी" दुस्साहसवाद का सामना किये बिना नया रास्ता नहीं निकलेगा। साथ ही, मज़दूर वर्ग की सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी की अनिवार्यता पर उन्होंने बल दिया था। समय आ गया है कि हम इस प्रश्न पर नये सिरे से, गम्भीरता के साथ सोचें। एकता बनाने के लिए हमें अपने मतभेदों को चिन्हित करना होगा और वाद-विवाद, विचार-विमर्श के रास्ते आगे बढ़ना होगा। शेख अंसार ने कहा कि संघर्ष के नये रूप आन्दोलन से ही पैदा होते हैं। पर यह क्रिया स्वत:स्फूर्त नहीं होती। अनुभव का यदि विश्लेषण-समाहार करके आगे के रास्ते का ब्लू प्रिण्ट न बनाया जाये तो नेतृत्व की भूमिका नहीं निभाई जा सकती।

पटना से आये ट्रेड यूनियन कर्मी और लेखक-कवि **नरेन्द्र कुमार** ने आधार वक्तव्य पर टिप्पणी करते हुए कहा कि प्रतिरोध के नये रूपों की बात करते हुए असंगठित मज़दूरों पर ज्यादा ज़ोर दिया जा रहा है। अक्सर अलग-अलग जगहों के सीमित अनुभव के आधार पर केन्द्रीय नीति तय होने लगती है, जबकि राष्ट्रीय पैमाने का यथार्थ वैसा ही नहीं होता। आधार वक्तव्य में वास्तविक मज़दूर पर ज़ोर कम दिया गया है और मज़दूर वर्ग के दायरे को बहुत फैला दिया गया है। साथ ही 'लेबर एरिस्टोक्रेसी' की बात पर भी कुछ ज़्यादा ही ज़ोर दिया जा रहा है। नरेन्द्र कुमार ने मज़दूर वर्ग के आन्दोलनों के किसी राष्ट्रीय समन्वय केन्द्र की आवश्यकता को विशेष तौर पर रेखांकित किया।

शहीद भगतसिंह विचार मंच, सिरसा के **कश्मीर सिंह** ने इस बात से असहमति ज़ाहिर की कि आज वास्तविक उत्पादन में पूँजी निवेश नहीं हो रहा है। **जनसंघर्ष मंच, हरियाणा** के **सोमदत्त गौतम** ने कहा कि भूमण्डलीकरण के दौर में प्रतिरोध के नये रूप विकसित करने के साथ ही पुराने रूपों को पूरी तरह खारिज नहीं कर देना चाहिए। **जनचेतना मंच**, गोहाना के संयोजक **डा. सी.डी. शर्मा** ने भारत के मज़दूर आन्दोलन के वैचारिक पक्ष को कमज़ोर बताते हुए कहा कि नयी चुनौतियों-समस्याओं का सामना करने के लिए वैज्ञानिक विचारधारा का अध्ययन ज़रूरी है। **क्रान्तिकारी युवा संगठन**, दिल्ली के **आलोक** ने मज़दूरों के रिहायशी इलाकों में उन्हें संगठित करने के विचार से सहमति जताते हुए कहा कि कारख़ानों में संगठित मज़दूरों के संघर्षों की उपेक्षा करना ख़तरनाक होगा।

यू.एन.आई. इम्प्लाइज़ फ़ेडरेशन के महासचिव **चन्द्रप्रकाश झा** ने संगोष्ठी के लिए विशेष तौर पर मुम्बई से भेजे अपने आलेख में मीडिया में श्रम से जुड़े मुद्दों के लिए जगह लगातार कम होते जाने की चर्चा करते हुए कहा कि आज ज़्यादातर पत्रकार स्वयं को श्रमजीवी मानते ही नहीं हैं। बहुत से पत्रकारों को यह नहीं पता है कि उनके लिए बना एकमात्र कानून 'वर्किंग जर्नलिस्ट्स ऐक्ट' लगभग पूरी तरह औद्योगिक विवाद अधिनियम (1947) और ट्रेड यूनियन अधिनियम (1926) पर आधारित है। आज बहुत ही कम मीडिया घरानों में यूनियनें रह गयी हैं, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में तो स्थिति और भी बुरी है। बाज़ार की अन्धी शक्तियों के विरुद्ध मज़दूरों के संगठित प्रतिरोध से ही स्थितियाँ बदलेंगी।

समापन वक्तव्य

अन्त में आधार वक्तव्य के प्रस्तोता अभिनव ने अपना एक संक्षिप्त समापन-वक्तव्य रखा, जिसमें उन्होंने कुछ विभ्रमों और भ्रान्त धारणाओं का निराकरण करते हुए कुछ विरोधी अवस्थितियों की आलोचना भी प्रस्तुत की।

नेतृत्व देने और संगठित होने की अनौपचारिक मज़दूरों की क्षमता से जुड़े प्रश्नों का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि पूरा आन्दोलन और यहाँ तक कि अकादमिक जगत भी लम्बे समय से जड़ जमाये इस रूढ़ मताग्रही धारणा का आज भी शिकार है कि अनौपचारिक मज़दूर ग्रामीण या पिछड़ी चेतना वाला और आधुनिकता विरोधी होता है। लेकिन आज का अनौपचारिक मज़दूर शहरी है, आधुनिक है, औद्योगिक है, कुशल है और प्रगतिशील विचारों वाला है। हमें आज के यथार्थ का अध्ययन करके यह समझना होगा कि उत्पादन-प्रक्रिया में बदलाव के चलते, न केवल बड़े उद्योगों के अनौपचारिक मज़दूर, बल्कि उनके 'एन्सिलियरी' के तौर पर काम करने वाले छोटे उद्योगों के अनौपचारिक मज़दूर और इस शृंखला से जुड़े 'सबकाण्ट्रैक्टिंग' और पीसरेट के मज़दूर भी वस्तुगत तौर पर, आधुनिक दृष्टि से, मैन्युफ़ैक्चरिंग और मशीनोफ़ैक्चरिंग के आधुनिक संगठित सर्वहारा हैं। फ़र्क सिर्फ यह है कि ये एक छत के नीचे स्थायी तौर पर कार्यरत मज़दूर नहीं हैं। लेकिन, अलग-अलग कारख़ानों में काम करने से इनकी "पेशागत संकुचित वृत्ति" टूटी है और 'दृष्टि' व्यापक हुई है। यह एक और अतिरिक्त सकारात्मक पहलू है, जो बताता है कि यह आज का आधुनिक, औद्योगिक सर्वहारा है और अन्तर्वस्तु की दृष्टि से संगठित सर्वहारा है। बेशक, जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, समूचे अनौपचारिक क्षेत्र का चरित्र समरूपी नहीं है, उसमें एक छोटी-सी ऐसी बिखरी हुई मेहनतकश आबादी भी है जो पूँजी के मुख्य परिपथ से पृथक्कृत है और कुछ ऐसे छोटे उत्पादक भी हैं, जो अधिशेष का विनियोजन करते हैं।

इसी तरह, असेम्बली लाइन के विखण्डन की परिघटना को भी समझने में रूढ़ मताग्रह बाधक बन रहा है। आधार वक्तव्य में यह कहीं नहीं कहा गया है कि असेम्बली लाइन है ही नहीं। असेम्बली लाइन है, पर उसे बिखरा दिया गया है, यह 'फ्रैग्मेण्टेड ग्लोबल असेम्बली लाइन' है। एक ही छत के नीचे कार्यरत मज़दूर आबादी को बिखरा देने के लिए और श्रम-शक्ति और कच्चे माल को सस्ती से सस्ती दरों पर लूटने के लिए एक बड़ी असेम्बली लाइन की जगह दूर-दूर बिखरी कई छोटी असेम्बली लाइनों, छोटे-छोटे वर्कशॉपों और पीसरेट पर काम करने वाले घरेलू उपक्रमों की एक संश्लिष्ट शृंखला बना दी गयी है, जो स्वचालन की नयी प्रविधियों, संचार क्रान्ति, कम्प्यूटरीकरण, परिवहन के आधुनिकीकरण और पूँजी की आवाजाही को निर्बाध बनाने वाली राष्ट्र-राज्यों की नयी भूमिका के चलते सम्भव हो सका है।

'लेबर एरिस्टोक्रेसी' के प्रश्न पर भी अभिनव ने स्पष्ट किया कि ऐसा कत्तई नहीं कहा गया है कि बड़े उद्योगों के सभी स्थायी मज़दूर कुलीन मज़दूर हैं। हाँ, उनका एक हिस्सा निश्चय ही कुलीन मज़दूर की श्रेणी में आता है। शेष जो नियमित मज़दूर हैं, जिन्हें बेहतर वेतन और सामाजिक सुरक्षा हासिल है, आज के ठहराव और राजनीतिक कार्यों के अभाव के समय में वे अनियमित मज़दूरों के साथ खड़े नहीं हैं और आन्दोलनों से दूर हैं, पर उनमें काम अवश्य करना होगा। समस्या यह है कि वहाँ संशोधनवादी ट्रेड यूनियन नौकरशाहों की जकड़बन्दी सर्वाधिक मज़बूत है जिसे तोड़ने के लिए बहुत अधिक संगठित शक्ति और सुदीर्घ प्रयासों की जरूरत है।

सुभाष शर्मा द्वारा उठाये गये प्रश्न का उत्तर देते हुए अभिनव ने कहा कि संघर्ष के नये रूप मज़दूर वर्ग के हिरावल के सचेतन हस्तक्षेप के बिना नहीं ईजाद होते। बेशक हम जनता के स्वत:स्फूर्त संघर्षों के सकारात्मक-नकारात्मक अनुभवों का समाहार करते हैं और वस्तुगत परिस्थितियों के अध्ययन के निष्कर्षों के साथ इनका संश्लेषण करते हैं, और तब फिर संघर्ष के नये रूपों की परिकल्पना की जाती है, जो फिर सामाजिक प्रयोगों के दौरान सत्यापित, संशोधित और परिवर्धित होते हैं। यदि हम ऐसा नहीं करते और सोचते हैं कि आने वाले दिनों के संघर्ष स्वत: अपने नये रूप विकसित कर लेंगे, तो यह पूरी तरह से स्वत:स्फूर्ततावाद होगा। हरावल दस्ता मज़दूर वर्ग से सीखता है, लेकिन फिर अपनी पारी में, वह उसे सिखाता भी है। आज कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन में मज़दूर-स्वत:स्फूर्तता की पूजा और लोकरंजकतावाद का भटकाव गम्भीर रूपों में नजर आ रहा है। मज़दूर वर्ग की स्वत:स्फूर्तता की आलोचनात्मक जाँच-परख करके और उसे परिष्कृत करके नये रूपों की सर्जना हरावल शक्तियों का काम है।

केवल आधे घण्टे का विराम लेकर पूर्वाह्न 11.30 से रात 8.30 बजे तक चले इस गम्भीर बहस-मुबाहसे के बाद गर्मजोशी और संजीदगी भरे कामरेडाना माहौल में संगोष्ठी का समापन हुआ। अधिकांश भागीदारों का मानना था कि इस विषय पर, और ऐसे ही महत्वपूर्ण अन्य विषयों पर कई दिनों की संगोष्ठी करना आज वक्त की ज़रूरत है। सबका कहना था कि यह शुरुआत आगे बढ़नी चाहिए और सिलसिले के रूप में जारी रहनी चाहिए।

संगोष्ठी में प्रख्यात अर्थशास्त्री **प्रो. दलीप स्वामी**, कवि **इब्बार रब्बी**, **'अलाव'** पत्रिका के सम्पादक **रामकुमार कृषक**, **शहीद भगतसिंह विचार मंच**, सिरसा के **डा. सुखदेव हुंदल**, **मज़दूर एकता लहर** के **धर्मेन्द्र कुमार, सेंटर फॉर स्ट्रगलिंग विमेन** की **माया**, **समाजवादी जबरन जोत हक्क अभियान**, नागपुर के **एकनाथ बावनकर**, **दलितों पर अत्याचार विरोधी समिति** के **जयप्रकाश**, टाइम्स ऑफ इंडिया कर्मचारी यूनियन के **सी.के. पाण्डेय**, **मेहनतकश मज़दूर मोर्चा**, **आईसीटीयू, मेट्रो कामगार संघर्ष समिति**, दिल्ली, **बादाम मज़दूर यूनियन**, करावलनगर दिल्ली, **कारख़ाना मज़दूर यूनियन**, लुधियाना तथा गोरखपुर, मर्यादपुर, लखनऊ, नोएडा, गाजियाबाद, लुधियाना और चण्डीगढ़ से **बिगुल मज़दूर दस्ता, दिशा छात्र संगठन, नौजवान भारत सभा, स्त्री मुक्ति लीग, देहाती मज़दूर यूनियन** आदि के प्रतिनिधि भी मौजूद थे। आर्थिक विकास संस्थान (दिल्ली वि.वि.) से जुड़ी जापानी शोधार्थी **मायुमी मुरियामा** ने भी संगोष्ठी में भागीदारी की।

– बिगुल संवाददाता

फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें? (तीसरी किश्त)

● अभिनव

इटली में फ़ासीवाद

इटली में फ़ासीवाद की हमारी चर्चा के इतना विस्तृत होने की कोई आवश्यकता नहीं है। हम यहाँ उन कारकों की चर्चा करेंगे जिनके मामले में इटली में फ़ासीवादी उभार जर्मनी से अलग था।

इटली में फ़ासीवादी आन्दोलन की शुरुआत 1919 में हुई। युद्ध की समाप्ति के बाद इटली के मिलान शहर में बेनिटो मुसोलिनी ने फ़ासीवादी आन्दोलन की शुरुआत करते हुए एक सभा बुलायी। इस सभा में कुल जमा क़रीब 100 लोग इकट्ठा हुए। इसमें से अधिकांश युद्ध में भाग लेने वाले नौजवान सिपाही थे। पहले विश्वयुद्ध में मित्र राष्ट्रों की तरफ़ से युद्ध में हिस्सा लेने के बावजूद इटली को उसका उचित पुरस्कार नहीं मिला जबकि युद्ध में उसे काफ़ी क्षति उठानी पड़ी थी। इससे पूरे देश में एक प्रतिक्रिया का माहौल था, ख़ासकर सैनिकों के बीच। दूसरी तरफ़, देश की आर्थिक स्थिति बुरी तरह से डावाँडोल थी। सरकार एकदम अप्रभावी और कमज़ोर थी और कोई भी क़दम नहीं उठा पा रही थी। एक ऐसे समय में मुसोलिनी ने फ़ासीवादी आन्दोलन की शुरुआत की। मुसोलिनी ने इस सभा में खुले तौर पर ऐलान किया कि फ़ासीवाद मार्क्सवाद, उदारवाद, शान्तिवाद और स्वतन्त्रता का खुला दुश्मन है। यह राजसत्ता के हर शक्ति से ऊपर होने, उग्र राष्ट्रवाद, नस्ली श्रेष्ठता, युद्ध, नायकवाद, पवित्रता और अनुशासन में यक़ीन करता है। आर्थिक और सामाजिक तौर पर बिखरे हुए और असुरक्षा और अनिश्चितता का सामना कर रहे एक राष्ट्र को ऐसे जुमले आकृष्ट करते हैं, ख़ासतौर पर तब, जबकि कोई क्रान्तिकारी सम्भावना उनकी दृष्टि में न हो। फ़ासीवाद के आर्थिक और सामाजिक आधारों के बारे में हम आगे चर्चा करेंगे। पहले उसके वैचारिक आधारों की बात कर लें। मुसोलिनी पहले **इतालवी समाजवादी पार्टी** में शामिल था। 1903 से 1914 तक वह समाजवादी पार्टी का एक महत्त्वपूर्ण नेता था। इसके बाद वह **जॉर्ज सोरेल** नामक एक संघाधिपत्यवादी चिन्तक के प्रभाव में आया, जो कहता था कि संसदीय जनतन्त्र नहीं होना चाहिए और श्रम संघों द्वारा सरकार चलायी जानी चाहिए। मुसोलिनी पर दूसरा गहरा प्रभाव **फ्रेडरिख नीत्शे** नामक जर्मन दार्शनिक का था, जो मानता था कि इतिहास में अतिमानव और नायकों की केन्द्रीय भूमिका होती है, जिनमें सत्ता प्राप्त करने की इच्छाशक्ति होती है। इन सारे विचारों का मेल करके ही इटली में **जेण्टाइल** नामक फ़ासीवादी चिन्तक की सहायता से मुसोलिनी ने पूरे फ़ासीवादी सिद्धान्त की रचना की। यह सिद्धान्त मज़दूर-विरोधी, पूँजी के पक्ष में खुली तानाशाही, अधिनायकवाद, जनवाद-विरोध, कम्युनिज़्म-विरोध और साम्राज्य-वादी विस्तार की खुले तौर पर वकालत करता था।

लेकिन यह सिद्धान्त कोई जेण्टाइल और मुसोलिनी के दिमाग़ की उपज नहीं था। यदि जेण्टाइल व मुसोलिनी न होते तो कोई और होता क्योंकि समाज में इस प्रकार एक प्रतिक्रियावादी विचार और आन्दोलन की ज़मीन मौजूद थी। इस ज़मीन को समझकर ही इटली में फ़ासीवादी उभार को समझा जा सकता है।

जर्मनी के समान इटली में भी पूँजीवादी विकास बहुत देर से शुरू हुआ। इटली का एकीकरण 1861 से 1870 के बीच हुआ। जैसाकि हम पिछले उपशीर्षक में ही बता चुके हैं, इस समय तक ब्रिटेन, फ़्रांस और हॉलैण्ड जैसे देश पूँजीवादी विकास की एक लम्बी यात्रा तय कर चुके थे और औद्योगिक क्रान्ति को भी अंजाम दे चुके थे। इन देशों में रैडिकल भूमि-सुधार लागू किये गये थे। पूँजीवादी विकास एक लम्बी प्रक्रिया में हुआ था, जिसके कारण इससे पैदा होने वाले सामाजिक तनाव को व्यवस्था जनवादी दायरे के भीतर रहते हुए ही झेल सकती थी। इटली में 1890 के दशक में औद्योगीकरण की शुरुआत हुई और जर्मनी के ही समान इसकी रफ़्तार काफ़ी तेज़ रही। जर्मनी से अलग इटली में यह विकास क्षेत्रीय तौर पर बहुत असमानतापूर्ण रहा। उत्तरी इटली में मिलान, तूरिन और रोम से बनने वाले त्रिभुजाकार इलाक़े में उद्योगों का ज़बरदस्त विकास हुआ और एक मज़दूर आन्दोलन भी पैदा हुआ जिसका नेतृत्व पहले इतालवी समाजवादी पार्टी कर रही थी और बाद में इसके नेतृत्व में इतालवी कम्युनिस्ट पार्टी का भी प्रवेश हुआ। उत्तरी इटली के क्षेत्रों में भूमि-सुधार भी एक हद तक लागू हुए और कृषि का वाणिज्यीकरण हुआ जिसके कारण कृषि में पूँजीवादी विकास हुआ। नतीजतन, औद्योगिक और कृषि क्षेत्र, दोनों में ही एक मज़दूर आन्दोलन पैदा हुआ। दूसरी ओर दक्षिणी इटली था जहाँ सामन्ती उत्पादन सम्बन्धों का वर्चस्व क़ायम था। यहाँ कोई भूमि सुधार लागू नहीं हुए थे और बड़ी-बड़ी जागीरें थीं जिन पर विशाल भूस्वामियों का क़ब्ज़ा था। इसके अतिरिक्त, छोटे किसानों और खेतिहर मज़दूरों की एक विशाल आबादी थी जो पूरी तरह इन बड़े भूस्वामियों के नियन्त्रण में थी। इस नियन्त्रण को ये भूस्वामी अपने सशस्त्र गिरोहों द्वारा क़ायम रखते थे। इन्हीं गिरोहों को इटली में माफ़िया कहा जाता था जो बाद में स्वायत्त शक्ति बन गये और पैसे के लिए लूटने, मारने और चोट पहुँचाने का काम करने लगे। फ़ासीवादियों ने इन माफिया गिरोहों का ख़ूब लाभ उठाया। दक्षिणी इटली में औद्योगिक विकास न के बराबर था। इस फ़र्क़ के बावजूद, या यूँ कहें कि इसी फ़र्क़ के कारण फ़ासीवादियों को दो अलग-अलग प्रकार के प्रतिक्रियावादी वर्गों का समर्थन प्राप्त हुआ। वह कैसे हुआ इस पर हम बाद में आते हैं, पहले उस प्रक्रिया पर निगाह डालें जिसके ज़रिये मुसोलिनी सत्ता में आया।

1896 में इटली को इरिट्रिया से अपने साम्राज्य को इथियोपिया तक फैलाने के प्रयास में अडोवा नामक जगह पर एक शर्मनाक पराजय का सामना करना पड़ा। इसके कारण देश में चार वर्षों तक एक भयंकर अस्थिरता का माहौल पैदा हो गया। लेकिन 1900 से 1914 तक के दौर में उदारवादी पूँजीवादी प्रधानमन्त्री गियोवान्नी गियोलिटी के नेतृत्व में थोड़ी स्थिरता वापस लौटी और इटली में औद्योगिक विकास ने और गति पकड़ी। 1913 में सर्वमताधिकार के आधार पर इटली में पहले आम चुनाव आयोजित किये गये। लेकिन यह जनवादी संसदीय व्यवस्था अभी अपने पाँव जमा ही पायी थी कि 1915 में इटली ने मित्र राष्ट्रों की तरफ़ से प्रथम विश्वयुद्ध में प्रवेश किया। इसके बाद इटली में जो अस्थिरता पैदा हुई, उसने संसदीय व्यवस्था को जमने ही नहीं दिया। अक्टूबर 1917 में इटली कापोरेट्टो नामक जगह पर बुरी तरह हारते-हारते बचा। युद्ध के बाद इटली को कुछ ख़ास हासिल नहीं हुआ। इन सभी कारकों की वजह से पूरा देश विभाजित था। इसका प्रमुख कारण इटली का आर्थिक रूप से छिन्न-भिन्न हो जाना भी था। 1919 में जो चुनाव हुए, उसमें किसी को पूर्ण बहुमत नहीं मिला। समाजवादियों और उदारवादियों को सबसे अधिक वोट मिले थे, लेकिन वे साथ में सरकार बनाने को तैयार नहीं थे। समाजवादियों ने 1919 में बोल्शेविक क्रान्ति के प्रभाव में वक़्त से पहले ही सशस्त्र संघर्ष शुरू कर दिया। 1919-20 में इटली की पो घाटी में यह संघर्ष काफ़ी आगे तक गया। समाजवादियों ने कई शहरों पर एक तरह से क़ब्ज़ा कर लिया था। ऐसा लग रहा था कि इटली एक गृहयुद्ध की कगार पर खड़ा है। लेकिन समाजवादियों ने इस उभार को सँभाल पाने के लिए न अपनी तैयारी की थी और न ही जनता की। नतीजतन, यह उभार कुचल दिया गया। इसे कुचलने में जहाँ बुर्जुआ राजसत्ता ने एक भूमिका निभायी, वहीं फ़ासीवादी सशस्त्र गिरोहों ने भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। 1919 के चुनावों में फ़ासीवादियों को कोई विशेष सफलता नहीं मिली थी। लेकिन **1919-20 के मज़दूर उभार** ने सम्पत्तिधारी वर्गों के दिल में एक ख़ौफ़ पैदा कर दिया था। रूस में जो कुछ हुआ था, वह उनके सामने था। ऐसे मौक़े पर उन्हें किसी ऐसी ताक़त की ज़रूरत थी जो मज़दूर उभार को कुचलने के लिए एक वैकल्पिक गोलबन्दी कर सके। यह वायदा मुसोलिनी ने उनसे किया। मुसोलिनी ने उद्योगपतियों से वायदा किया कि अगर वे उसे समर्थन देते हैं तो वह औद्योगिक अनुशासन को फिर से स्थापित करेगा। इसके बाद से ही मुसोलिनी को उद्योगपतियों से भारी आर्थिक मदद मिलनी शुरू हुई जिसके बूते पर फ़ासीवादियों ने ज़बरदस्त प्रचार किया और जनता के दिमाग़ में ज़हर घोला। शहरों में फ़ासीवादियों के सशस्त्र दस्तों ने मज़दूर कार्यकर्ताओं, ट्रेडयूनियनिस्टों, कम्युनिस्टों, हड़तालियों आदि पर हमले और उनकी हत्याएँ करनी शुरू कीं। फ़ासीवाद पूँजी, और विशेषकर बड़ी पूँजी की सेवा में अपने हरबे-हथियारों के साथ हाज़िर था।

दक्षिणी इटली में बड़े भूस्वामी अपने तईं स्वयं फ़ासीवादी तरीक़ों से किसानों और खेतिहर मज़दूरों के संघर्ष का दमन कर रहे थे। फ़ासीवाद की यह क़िस्म जल्दी ही मुसोलिनी के फ़ासीवाद में समाहित हो गयी और बड़ा भूस्वामी वर्ग मुसोलिनी का एक बड़ा समर्थक बनकर उभरा। 1920 के अन्त में एक अन्य प्रतिद्वन्द्वी फ़ासीवादी संगठन जिसका नेता **गेब्रियेल दि' अनुंसियो** था, मुसोलिनी की फ़ासीवादी धारा में शामिल हो गया। 1921 तक इतालवी समाजवादी पार्टी द्वारा बिना किसी तैयारी के किया गया सशस्त्र विद्रोह कुचला जा चुका था। शहरों में क़ायम हुआ मज़दूर नियन्त्रण योजना और हथियारबन्द तैयारी के अभाव में कुचला जा चुका था। फ़ासीवादी आन्दोलन की बढ़त स्पष्ट रूप से हासिल हो चुकी थी। अक्टूबर 1922 में मुसोलिनी ने नेपल्स में फ़ासीवादी पार्टी की कांग्रेस में निर्णय लिया कि फ़ासीवादी रोम पर चढ़ाई करेंगे। फ़ासीवादी सशस्त्र गिरोहों ने रोम पर चढ़ाई शुरू कर दी। राजा **विक्टर इमानुएल तृतीय** ने घुटने टेक दिये और मुसोलिनी को सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित किया और इसके साथ 1922 में मुसोलिनी इटली का प्रधानमन्त्री बना। उसने एक गठबन्धन सरकार गठित की जिसमें इतालवी संशोधनवादी शामिल थे, जिस पर कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए! उनका मानना था कि मुसोलिनी को वे उदारवादी धारा का अंग बना लेंगे। इतिहास ने उनकी इस इच्छा को मूर्खतापूर्ण साबित किया।

1924 के चुनावों में फ़ासीवादी पार्टी को 65 प्रतिशत वोट प्राप्त हुए। हालाँकि, सामाजिक जनवादी नेता **मात्तिओत्ती** ने संसद में प्रमाण सहित साबित किया कि चुनाव में फ़ासीवादियों ने घपले और बल के आधार पर दो-तिहाई के क़रीब वोट हासिल किये हैं, लेकिन फ़ासीवादियों ने संसद में शोर मचाकर उसे आगे बोलने ही नहीं दिया। दो महीने बाद फ़ासीवादी गुण्डों ने मात्तिओत्ती को चाकू से गोद-गोदकर मार डाला। यही हाल जल्दी ही उन सभी राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वियों का हुआ जिन्होंने मुसोलिनी की मुख़ालफ़त की हिम्मत की। 1925 में मुसोलिनी ने अपनी खुली तानाशाही को स्थापित करने की प्रक्रिया शुरू कर दी। एक-एक करके सभी अन्य पार्टियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। नवम्बर, 1926 में **"अपवादस्वरूप पेश क़ानूनों"** के साथ यह प्रक्रिया पूरी हो गयी। इसके बाद के 17 वर्षों में मुसोलिनी ने अपने सभी राजनीतिक प्रतिद्वन्द्वियों को ख़त्म करने का काम किया और किसी को भी सिर नहीं उठाने दिया।

फ़ासीवादी शासन के सुदृढ़ रूप से स्थापित होने के बाद मज़दूर प्रतिरोध को बुरी तरह कुचल दिया गया। कहने के लिए **मालिकों और मज़दूरों के संघ** बनाए गये, जिसमें कि फ़ासीवादी पार्टी के लोग भी होते थे। इन संघों को ही निर्णय लेने का अधिकार था कि उत्पादन कितना, कैसे और किसके लिए किया जाय। लेकिन यह बात बस दिखावा थी। वास्तव में मज़दूर प्रतिनिधि इसमें कुछ भी नहीं बोल सकते थे। सारे निर्णय पूँजीपतियों के प्रतिनिधि फ़ासीवादियों के साथ मिलकर लेते थे। मज़दूरों के एक हिस्से को फ़ासीवादियों ने अपने साथ मिला रखा था जिसके कारण मज़दूर कोई संगठित प्रतिरोध नहीं खड़ा कर पाते थे। अपने साथ मज़दूरों को शामिल करने के लिए फ़ासीवादियों ने उनके बीच सुधार के काम किये और उनके मनोरंजन के लिए क्लब आदि बनाए। साथ ही, उनके बीच आपसी आर्थिक सहयोग के संगठन बनाए जिनका फ़ायदा 10 से 15 फीसदी मज़दूरों को मिलता था। लेकिन सिर्फ़ इतने मज़दूरों को एक भ्रामक और बेहद मामूली फ़ायदा पहुँचाकर और अच्छे-ख़ासे मज़दूरों को इस फ़ायदे का सपना दिखलाकर वे मज़दूरों की वर्ग चेतना और एकजुटता को तोड़ने में सफल हो गये। यही कारण था कि ऐसे मालिक-मज़दूर संघों में मज़दूरों का ज़बरदस्त शोषण जारी रहा और उसका कोई कारगर प्रतिरोध भी नहीं हो सका। बाद में बात यहाँ तक पहुँच गयी कि हड़ताल पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, किसी भी प्रकार के प्रदर्शन या जुटान को अपराध घोषित कर दिया गया, ट्रेडयूनियनों पर रोक लगा दी गयी और उनकी जगह पूँजी की तलवे चाटने वाले मज़दूर संघों ने ले ली जिनमें फ़ासीवादी घुसे होते थे। फ़ासीवादियों ने वर्ग सहयोग के नाम पर उजरती श्रम की गुलामी को और अधिक बढ़ाया और मज़दूरों को पूँजीपतियों का और अधिक गुलाम बनाया।

इतालवी फ़ासीवाद को कृषक पूँजीपति वर्ग का भी ज़बरदस्त समर्थन प्राप्त था। हम पहले भी बता चुके हैं कि उत्तरी इटली में पूँजीवादी कृषि का विकास हो गया था और वहाँ एक उन्नत कृषक पूँजीपति वर्ग सामने आ चुका था। लेकिन साथ ही ग़रीब किसानों और खेतिहर मज़दूरों का एक आन्दोलन भी कम्युनिस्टों और समाजवादियों के नेतृत्व में पैदा हो चुका था। संगठित किसान व खेतिहर मज़दूर संघर्षों के कारण मुनाफ़े की दर कम होती जा रही थी। इससे निपटने के लिए इन पूँजीपतियों को राजसत्ता के समर्थन की आवश्यकता थी। लेकिन इतालवी एकीकरण के बाद उदारवादी पूँजीवादी राजसत्ता इतनी ताक़तवर नहीं थी कि पूँजी के पक्ष में कोई खुला दमनात्मक क़दम उठा सके। नतीजतन यहाँ पर फ़ासीवादियों के उभार की एक ज़मीन मौजूद थी। फ़ासीवादियों ने इन मज़दूर आन्दोलनों पर नकेल कसने का कृषक पूँजीपतियों से वायदा किया और इसके बदले में उन्हें उनका सहयोग-समर्थन प्राप्त हुआ। राज्य हस्तक्षेप की जगह फ़ासीवादियों के नग्न हस्तक्षेप ने ली। दक्षिणी इटली में बड़े भूस्वामी वर्ग को फ़ासीवादी पार्टी के समर्थन की ज़रूरत नहीं थी क्योंकि वह सभी फ़ासीवादी क़दम और हिंस्र हमले अपने माफिया गिरोहों के दम पर कर लेता था और अपने यहाँ की ग़रीब किसान व काश्तकार आबादी व खेतिहर मज़दूरों को कुचलकर रखता था। फ़ासीवादी पार्टी ने मुसोलिनी के नेतृत्व में कुशलता से फ़ासीवाद की इस अभिव्यक्ति को अपने में समाहित करा लिया। यहाँ का बड़ा भूस्वामी वर्ग भी फ़ासीवाद का ज़बरदस्त समर्थक बना।

इटली में फ़ासीवाद के उदय की पृष्ठभूमि और प्रक्रिया के इस विश्लेषण के बाद साफ़ है कि यहाँ पर भी फ़ासीवादी उभार की मूल वजहें कमोबेश वे ही रही हैं जो जर्मनी में थीं। जर्मनी में फ़ासीवाद के उदय का कालानुक्रम अलग था, लेकिन वहाँ पर भी प्रेरक शक्तियाँ कमोबेश वे ही थीं।

(पेज 11 पर जारी)

अदम्य बोल्शेविक – नताशा

एक स्त्री मज़दूर संगठनकर्ता की संक्षिप्त जीवनी

(आठवीं क़िश्त)

एल. काताशेवा

रूस की अक्टूबर क्रान्ति के लिए मज़दूरों को संगठित, शिक्षित और प्रशिक्षित करने के लिए हज़ारों बोल्शेविक कार्यकर्ताओं ने बरसों तक बेहद कठिन हालात में, ज़बरदस्त क़ुर्बानियों से भरा जीवन जीते हुए काम किया। उनमें बहुत बड़ी संख्या में महिला बोल्शेविक कार्यकर्ता भी थीं। ऐसी ही एक बोल्शेविक मज़दूर संगठनकर्ता थीं नताशा समोयलोवा जो आख़िरी साँस तक मज़दूरों के बीच काम करती रहीं। हम 'बिगुल' के पाठकों के लिए उनकी एक संक्षिप्त जीवनी का धारावाहिक प्रकाशन कर रहे हैं। हमें विश्वास है कि आम मज़दूरों और मज़दूर कार्यकर्ताओं को इससे बहुत कुछ सीखने को मिलेगा। – सम्पादक

(पिछले अंक से आगे)

1918। लेनिन ख़तरे से आगाह करते हैं "अन्तरराष्ट्रीय साम्राज्यवाद ने रूस पर हमला कर दिया है। वह हमारे देश को लूट रहा है।"

यह हस्तक्षेप की शुरुआत थी, गृह युद्ध की शुरुआत थी। नयी समस्याएँ उठ खड़ी हुईं, मसलन दुश्मन का मुक़ाबला करने के लिए स्त्री मज़दूरों को कैसे प्रोत्साहित, संगठित और आन्दोलित किया जाये। ये समस्याएँ हल कर ली गयीं। अक्टूबर क्रान्ति के दौरान हुए पेत्रोग्राद महिला सम्मेलन की याद उसके आयोजकों के दिमाग़ में अभी तक ताज़ा थी। उन्होंने समूचे युवा रूसी गणराज्य की स्त्री मज़दूरों का ग़ैरपार्टी सम्मेलन बुलाने का निर्णय लिया। आगे चलकर इस सम्मेलन में न केवल स्त्री मज़दूरों बल्कि किसान स्त्रियों को भी शामिल करने के लिए इसके दायरे को और विस्तारित किया गया। इसकी शुरुआत करने वालों में निस्सन्देह समोइलोवा भी थीं।

कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति ने, अपने सचिव स्वेर्दलोव के ज़रिये, इस प्रस्ताव का समर्थन किया। उन्होंने न केवल इसका समर्थन किया बल्कि इसे भारी मदद भी दी। उन्होंने इस नये और कठिन काम में कई ठोस उपाय सुझाये। इलाक़े की पार्टी कमेटियों से उन्होंने सहयोग का आह्वान किया। इस अधिवेशन की तैयारी के लिए एक आयोजक समूह का गठन किया गया। उसके सदस्य अधिवेशन के लिए आन्दोलन चलाने, क्रान्ति की कगार पर खड़े उस विशाल देश के सभी हिस्सों से अधिवेशन के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव कराने निकल पड़े जो ख़ुद अपने अस्तित्व के लिए अन्तरराष्ट्रीय साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ संघर्ष कर रहा था। हर तरफ़ युद्ध का मोर्चा खुला हुआ था, ज़िले के ज़िले तबाह-बर्बाद हो रहे थे, मार-काट मची हुई थी।

समोइलोवा ने सांगठनिक समस्याओं पर काम किया और 'कम्युनिस्ट पार्टी और स्त्री मज़दूर' पर एक रिपोर्ट तैयार की। सोवियत सत्ता के संघर्ष और इस सत्ता को सुदृढ़ करने के संघर्ष के इतिहास में इस अधिवेशन का विशिष्ट स्थान है। लेनिन ने इस कांग्रेस में बोलते हुए इसके महत्त्व को यदि रेखांकित किया, तो ऐसा करने का पर्याप्त कारण उनके पास मौजूद था।

इस अधिवेशन में आये प्रतिनिधियों के प्रमाणिक काग़ज़ात, जो अभिलेखागारों में सुरक्षित रखे हुए हैं, बताते हैं कि इसके आयोजन के लिए किस हद तक जाकर काम किया गया था और कितनी बड़ी तादाद में स्त्री मज़दूर इसमें शामिल हुई थीं। उस समय जब देश में गृह युद्ध चल रहा था, जब अन्तरराष्ट्रीय पूँजीपति वर्ग के दलाल मेहनतकशों के नवजात गणराज्य का जन्मते ही गला घोंटने की कोशिशों में लगे हुए थे, कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के आह्वान पर हर जगह फ़ैक्टरियों में पुरुष और स्त्री मज़दूर संघर्ष के लिए कार्यकर्ताओं की नयी क़तार में शामिल होने के लिए आगे आये। समूची पार्टी और सभी फ़ैक्टरियों ने इस आह्वान का जवाब दिया और इसकी अहमियत को समझा था।

उदाहरण के लिए, उन प्रमाणिक काग़ज़ातों के घुँधले पड़े पन्ने पलटने पर हम देखते हैं कि किस प्रकार कपड़ा उद्योग के मज़दूर कार्यकर्ताओं की क़तार में शामिल हो गये थे। उनमें अधिकांश स्त्रियाँ कपड़ा मज़दूर थीं। फ़ैक्टरियों में पुराने नामों के साथ-साथ, जो पूँजीवादियों के ख़िलाफ़ पहले के संघर्षों के चलते जाने जा चुके थे, नये नाम भी दिखायी पड़े। इस प्रकार, ओरेखोवो जुएवो स्थित मोरोज़ोव फ़ैक्टरी ने, जिसमें 16,214 महिला मज़दूर थीं, कांग्रेस में अपने प्रतिनिधि भेजे; उनके बाद ताम्बोव गुबेर्निया स्थित रेजोरोनोव, वाखरोमेयेव, देदोव और रेज्काजोव फ़ैक्टरियों की प्रतिनिधियाँ आयीं। पर्म और समारा से कई प्रतिनिधियों को भेजा गया। फ़ैक्टरियों के पुराने नामों के अलावा नये क्रान्तिकारी नाम भी देखने को मिलते हैं, जैसेकि दी रशियन रिपब्लिक फ़ैक्टरी, दी फ़िफ़्थ पीपुल्स टोबैको वर्क्स। प्रमाणिक काग़ज़ात पार्टी संगठनों, फ़ैक्टरी कमेटियों, ट्रेडयूनियनों, ज़िला कार्यकारी समितियों द्वारा जारी किये गये हैं। सभी मज़दूर स्त्रियाँ हैं, सिर्फ़ एक स्कूल अध्यापिका और एक किसान औरत पेलेजेया पर्फिल्येवा के अपवाद को छोड़कर, जो कोसिलोवो गाँव की है और ग़रीब किसानों की कमेटी का प्रतिनिधित्व करती है। आगे चलकर मास्को में स्त्रियों के कांग्रेस की ख़बर पाकर किसान औरतें स्वेच्छा से आयीं।

इस अधिवेशन ने, जिसमें यातायात सुविधाओं की भारी किल्लत के बावजूद विभिन्न ज़िलों से थोड़े समय में ही ग्यारह सौ महिला प्रतिनिधि आ पहुँची थीं, संगठन और शिक्षा के महान और जुझारू काम को अंजाम दिया। इसने क्रान्तिकारी अनुभवों के आदान-प्रदान में पहल की। दूर-दराज के इलाक़ों की मज़दूरों ने जाना कि पेत्रोग्राद की मज़दूर स्त्रियाँ किस प्रकार एक नयी जीवनशैली का आगाज़ कर रही हैं। इसने संघर्ष और निर्माण कार्य के लिए उन्हें प्रोत्साहित किया। समोइलोवा लिखाती हैं : "इस अधिवेशन ने सक्रिय मेहनतकश औरतों के बीच कई कार्यकर्ताओं को पैदा किया।"

लेनिन ने, जो अभी भी अपनी चोटों के चलते अस्वस्थ थे, इस अधिवेशन को सम्बोधित किया और इस दायरे में काम करने के बुनियादी सिद्धान्त प्रस्तुत किये। वह वहाँ उस समय पहुँचे जब एक खेतिहर स्त्री मज़दूर कुलक (धनी किसान) द्वारा शोषण की परेशानियों का ज़िक्र कर रही थी। उस खेत मज़दूर को यह अहसास हो चुका था कि शोषकों के ख़िलाफ़ संघर्ष के लिए सभी मेहनतकशों के साथ संगठित होकर ही जीवन की कठिनाइयों से निजात पाया जा सकता है। उसने इस बात का ऐलान किया कि अनपढ़ होने के बावजूद वह समझ गयी है कि उसके इर्द-गिर्द क्या चल रहा है, और ज़रूरत पड़ी तो वह बन्दूक़ उठाकर मोर्चे पर जा पहुँचेगी। उसने कहा कि "जिनके दिल कमज़ोर हैं और जो बन्दूक़ नहीं उठा सकतीं, उन्हें नर्सों की हैसियत से जाना चाहिए और अपनी बातों से साथियों का हौसला बढ़ाना चाहिए।"

लेनिन ने इशारा किया कि उसे बीच में न टोका जाये। वे तब तक उसकी बात सुनते रहे जब तक कि वह बोलती रही। उन्होंने अधिवेशन का अपना स्वागत भाषण इस तरह तैयार किया कि इस किसान औरत की बातों का जवाब दिया जा सके। उन्होंने कहा कि पिछली क्रान्तियाँ इसलिए पराजित हो गयीं क्योंकि गाँवों ने क़स्बों का साथ नहीं दिया था। लेकिन अगर एक बार गाँवों के ग़रीब शहरी मज़दूरों का साथ दें और कुलकों के ख़िलाफ़ ख़ुद को संगठित कर लें, तो हम सच्ची समाजवादी क्रान्ति के नये दौर में पहुँच जायेंगे। कुलकों के ख़िलाफ़ चलने वाला संघर्ष किसान औरतों को भी आकर्षित करेगा।

"साथियो", उन्होंने कहा, "कुछ अर्थों में सर्वहारा सेना की स्त्री आबादी का यह अधिवेशन विशेष रूप से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण इसलिए है, क्योंकि अन्य सभी देशों की स्त्रियाँ बड़ी ही मुश्किल से सक्रिय होती हैं। तमाम मुक्ति आन्दोलनों का अनुभव यह बताता है कि उनकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उनमें औरतें किस हद तक भाग लेती हैं। सोवियत सत्ता यह सुनिश्चित करने की हर चन्द कोशिश कर रही है कि स्त्रियाँ अपने सर्वहारा समाजवादी कार्य को स्वतन्त्रतापूर्वक अंजाम दे सकें।

"मेहनकश औरतों के बड़े हिस्से की व्यापक भागीदारी के बिना कोई भी समाजवादी क्रान्ति नहीं हो सकती।

"अभी तक कोई भी गणतन्त्र स्त्री को मुक्त नहीं कर सका है। सोवियत सत्ता उसकी मदद करेगी। हमारा लक्ष्य अपराजेय है क्योंकि सभी देशों में एक अपराजेय मज़दूर वर्ग आन्दोलित हो रहा है। इस आन्दोलन का अर्थ है अपराजेय समाजवादी क्रान्ति का उदय।

"हमें अवश्य याद रखना चाहिए", उन्होंने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "कि क्रान्ति की सफलता इस बात पर निर्भर है कि उसमें स्त्रियाँ किस हद तक भागीदारी करती हैं। चूँकि वे सिर्फ़ अपनी मुक्ति के लिए ही नहीं बल्कि समाजवाद (समाजवादी अर्थव्यवस्था) के लिए भी संघर्ष में उतरने लगी हैं, इसलिए समाज वादी क्रान्ति का लक्ष्य हासिल करने के बारे में हम आश्वस्त हो सकते हैं।"

अन्त में उन्होंने कहा :

"स्त्रियाँ जाग रही हैं, समाजवाद की जीत सुनिश्चित है।"

आगे चलकर लेनिन के विचार अख़बारों और स्त्रियों के अन्य सम्मेलनों जैसेकि 1919 में मास्को में आयोजित हुए सम्मेलन में विस्तार से रखे गये। उन्हें नारों के रूप में देशभर में प्रचारित-प्रसारित किया गया, जिससे और स्त्रियाँ भी प्रेरित हुईं। क्रान्तिकारी कामों और राजनीतिक जीवन में अपनी भूमिका तय करने के लिए लेनिन ने उनका आह्वान किया था।

समोइलोवा ने बार-बार अपने लेखों में इस अधिवेशन की चर्चा की है। उन्होंने इस पर अलग से एक पुस्तिका लिखी। और उन्हीं की पहल पर 1920 में इस अधिवेशन के प्रस्तावों को खारकोव में पुनः प्रकाशित किया गया। बाद में जब किसान औरतों के बीच काम करने का सवाल आया, तो उनकी स्मृति में उस किसान औरत की जीती- जागती तस्वीर उभर आयी जिसने युद्ध में अपना पति खो दिया था और यह सुनकर कि स्त्री और पुरुष मज़दूर गाँवों में ग़रीबों की मदद के लिए जा रहे हैं, उसने घोषणा की थी कि वह अपने बच्चों को छोड़ जायेगी और बन्दूक़ उठाकर इन तमाम "ज़मीन हड़पने वालों" के ख़िलाफ़ लड़ने जायेगी।

इस अधिवेशन का प्रभाव सिर्फ़ उन ग्यारह सौ प्रतिनिधियों पर ही नहीं पड़ा जो इसमें शामिल हुई थीं बल्कि उन दसियों हज़ार और कई जगह तो सैकड़ों हज़ार मज़दूरों पर भी पड़ा जिन्होंने उन्हें भेजा था।

कांग्रेस में समोइलोवा ने सांगठनिक सवालों पर चर्चा की। प्रतिनिधियों के साथ उनकी अनगिनत बार बातचीत हुई और उन्होंने उनके सामने स्पष्ट किया कि महिला मज़दूरों और किसानों को किस तरह निर्माण-कार्य में भाग लेना चाहिए। कांग्रेस में उपलब्ध प्रचुर सामग्री के आधार पर उन्होंने स्त्रियों के बीच उन बहुआयामी कामों की शुरुआत की जिससे हमारी पार्टी मज़बूत हुई और जनकार्य के उसके तौर-तरीक़ों का विकास हुआ। अधिवेशन की समाप्ति के बाद रूसी कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति ने स्त्रियों के बीच काम करने के लिए केन्द्रीय समिति और सभी स्थानीय पार्टी संगठनों, दोनों, के मार्गदर्शन में विशेष मशीनरी संगठित करने का निर्णय लिया।

इस अधिवेशन के परिणाम क्या रहे? इसे सोवियत सत्ता के इतिहास से जाना जा सकता है, उसके निर्माण-कार्य के उस सर्वतोमुखी विकास से जाना जा सकता है जो गृहयुद्ध के बावजूद जारी था, जो उन तमाम मोर्चों के खुल जाने के बावजूद जारी था जिनकी हिफ़ाज़त की जानी थी – पूरब में, उत्तर में, दक्षिण में और साइबेरिया में, यूराल्स में और काकेसस में, जबकि यूदेनिच पेत्रोग्राद के और देनीकिन ओरेल के ऐन दरवाज़े पर आ पहुँचा था । हर जगह महिला मज़दूरों और किसान औरतों ने सोवियत सत्ता के लिए संघर्ष किया, ख़ुद को निर्माण-कार्यों में झोंक दिया और उस समय चल रहे संगठन के महान काम में भागीदारी की।

लाल सेना की मदद करने के लिए लाल नर्सों के प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम आयोजित किये गये थे (लाल सेना के कितने ही जवान अपने जीवन के लिए इन औरतों की निष्ठा के प्रति ऋणी हैं।) लाल सेना और मज़दूरों को रसद पहुँचाने में मदद के लिए स्त्रियों ने उन रसद टुकड़ियों में काम किया जिन्हें खाद्यान्न और दूसरे उत्पादों के कोटे में जमा करने के लिए भेजा गया था। परन्तु इन सबसे बढ़कर वे मज़दूर स्त्रियाँ थीं, जिन्हें बच्चों की देखभाल करने, नर्सरियाँ और बाल गृह चलाने, स्कूलों में गर्म भोजन की व्यवस्था करने, सिलाई केन्द्रों का संचालन आदि करने के लिए भेजा गया था। आज की युवा पीढ़ी जो दूसरी पंचवर्षीय योजना के तहत समाजवाद का निर्माण कर रही है, अपने जीवन और अपनी ऊर्जा के लिए पहले महिला अधिवेशन की सक्रिय कार्यकर्ताओं की ऋणी है।

स्त्रियों ने सिर्फ़ पीछे के मोर्चे पर रहकर, सिर्फ़ चिकित्सीय दल का काम करके ही लाल सेना की मदद नहीं की थी। सोवियत सत्ता के पहले तीन साल का संक्षिप्त ब्योरा देते हुए *कोम्मुनिस्तका* ("वूमन कम्युनिस्ट") नामक पत्रिका साहस से भरपूर उन पलों का उल्लेख करती है जब देश की रक्षा के लिए मज़दूर स्त्रियों ने युद्ध में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया, जैसे 1919 में लुगांस्क, और तुला का युद्ध, जब मज़दूर स्त्रियों ने यह कसम खायी थी कि अगर रेनिकिन तुला के रास्ते मास्को पहुँचना चाहता है, तो वह उनकी लाशों पर से गुज़रकर ही वहाँ पहुँच पायेगा। और अन्त में लेनिनग्राद की वे मज़दूर स्त्रियाँ थीं जिन्होंने पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर अपने क्रान्तिकारी केन्द्र की हिफ़ाज़त की।

(अगले अंक में जारी)

अनुवादः विजयप्रकाश सिंह

मज़दूर एकता

मज़दूर एकता के बल पर हर ताक़त से टकरायेंगे
हर आँधी से हर बिजली से, हर आफ़त से टकरायेंगे!

जितना ही दमन किया तुमने उतना ही शेर हुए हैं हम,
ज़ालिम पंजे से लड़-लड़कर कुछ और दिलेर हुए हैं हम,
चाहे काले क़ानूनों का अम्बार लगाये जाओ तुम
कब जुल्मो-सितम की ताक़त से घबराकर ज़ेर हुए हैं हम,
तुम जितना हमें दबाओगे हम उतना बढ़ते जायेंगे
हर आँधी से हर बिजली से, हर आफ़त से टकरायेंगे!

जब तक मानव द्वारा मानव का लोहू पीना जारी है,
जब तक बदनाम कलण्डर में शोषण का महीना जारी है,
जब तक हत्यारे राजमहल सुख के सपनों में डूबे हैं
जब तक जनता का अधनंगे-अधभूखे जीना जारी है
हम इन्क़लाब के नारे से धरती आकाश गुंजायेंगे
हर आँधी से, हर बिजली से, हर आफ़त से टकरायेंगे!

तुम बीती हुई कहानी हो; अब अगला ज़माना अपना है,
तुम एक भयानक सपना थे, ये भोर सुहाना अपना है
जो कुछ भी दिखायी देता है, जो कुछ भी सुनायी देता है
उसमें से तुम्हारा कुछ भी नहीं वो सारा फ़साना अपना है,
वो दरिया झूम के उट्ठे हैं तिनकों से न टाले जायेंगे,
हर आँधी से, हर बिजली से, हर आफ़त से टकरायेंगे।

• कान्ति मोहन

प्रेमचन्द के जन्मदिवस (31 जुलाई) के अवसर पर

संसार आदिकाल से लक्ष्मी की पूजा करता चला आता है।... लेकिन संसार का जितना अकल्याण लक्ष्मी ने किया है, उतना शैतान ने नहीं किया। यह देवी नहीं डायन है। सम्पत्ति ने मनुष्य को क्रीतदास बना लिया है। उसकी सारी मानसिक, आत्मिक और दैहिक शक्ति केवल सम्पत्ति के संचय में बीत जाती है। मरते दम तक भी हमें यही हसरत रहती है कि हाय, इस सम्पत्ति का क्या हाल होगा। हम सम्पत्ति के लिए जीते हैं, उसी के लिए मरते हैं। हम विद्वान बनते हैं सम्पत्ति के लिए, गेरुए वस्त्र धारण करते हैं सम्पत्ति के लिए। घी में आलू मिलाकर हम क्यों बेचते हैं? दूध में पानी क्यों मिलाते हैं? भाँति-भाँति के वैज्ञानिक हिंसा-यंत्र क्यों बनाते हैं? वेश्याएँ क्यों बनती हैं, और डाके क्यों पड़ते हैं? इसका एकमात्र कारण सम्पत्ति है। जब तक सम्पत्तिहीन समाज का संगठन नहीं होगा, जब तक सम्पत्ति व्यक्तिवाद का अन्त न होगा, संसार को शान्ति न मिलेगी।

–प्रेमचन्द

('राष्ट्रीयता और अन्तरराष्ट्रीयता' लेख से)

फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें?

(पेज 7 से आगे)

फ़ासीवादी उभार की ज़मीन हमेशा पूँजीवादी विकास से पैदा होने वाली बेरोज़गारी, ग़रीबी, भुखमरी, अस्थिरता, असुरक्षा, अनिश्चितता और आर्थिक संकट से तैयार होती है। फ़ासीवादी प्रतिक्रिया के पैदा होने की उम्मीद उन देशों में सबसे अधिक होती है जहाँ पूँजीवादी विकास किसी क्रान्तिकारी प्रक्रिया के द्वारा नहीं बल्कि एक विकृत, विलम्बित और ठहरावग्रस्त प्रक्रिया से होता है। जर्मनी और इटली विश्व इतिहास के पटल पर बहुत देर से पैदा होने वाले राष्ट्र थे। इन देशों में एकीकृत पूँजीवाद और उसकी मण्डी में पैदा होने वाला अन्धराष्ट्रवाद तब अस्तित्व में आया जब विश्व पैमाने पर पूँजीवाद अपनी चरम अवस्था साम्राज्यवाद, यानी इजारेदार पूँजीवाद, की अवस्था में प्रवेश कर चुका था। नतीजतन, इन दोनों ही देशों में पूँजीवादी विकास बेहद द्रुत गति से हुआ जिसने आम मेहनतकश आबादी, निम्न मध्यवर्गीय आबादी और आम मध्यवर्गीय आबादी को इस गति से उजाड़ा जिसे सोख पाने की क्षमता इन देशों के अविकसित पूँजीवादी जनवाद में नहीं थी। दूसरी तरफ़, विश्वव्यापी पूँजीवादी मन्दी ने इन दोनों ही देशों के पूँजीपति वर्ग की हालत खस्ता कर दी। पूँजीपति वर्ग अब किसी उदारवादी पूँजीवादी जनवाद और उसकी कल्याणकारी नीतियों का ख़र्च उठाने के लिए क़तई तैयार नहीं था। वह मज़दूरों को उनके श्रम अधिकार देने के लिए भी तैयार नहीं था। इसके लिए सभी जनवादी अधिकारों का दमन और मज़दूर आन्दोलन को कुचलना ज़रूरी था। इस आन्दोलन को एक प्रतिक्रियावादी आन्दोलन के ज़रिये ही कुचला जा सकता था। यह प्रतिक्रियावादी आन्दोलन निम्न पूँजीपति वर्ग, लम्पट सर्वहारा वर्ग, धनी और मंझोले किसान वर्ग की प्रतिक्रिया की लहर पर सवार होकर जर्मनी में नात्सी पार्टी और इटली में फ़ासीवादी पार्टी ने खड़ा किया। हालाँकि समय ने यह साबित किया कि फ़ासीवादी उभार ने निम्न पूँजीपति वर्ग और लम्पट सर्वहारा या मंझोले किसान को कुछ भी नहीं दिया। आगे चलकर उनका भी दमन किया गया। वास्तव में, फ़ासीवादी उभार ने हर हमेशा मुख्य तौर पर दो ही वर्गों को फ़ायदा पहुँचाया क्योंकि वह उन्हीं का प्रतिनिधि था–वित्तीय और औद्योगिक बड़ा पूँजीपति वर्ग और धनी किसान, कुलक व फार्मरों का वर्ग, यानी बड़ा कृषक पूँजीपति वर्ग। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि इतिहास के समक्ष और कोई रास्ता नहीं था। सच्चाई तो यह है कि ऐसे देशों में पूँजीवादी संकट पैदा होने के बाद क्रान्तिकारी सम्भावना और प्रतिक्रियावादी सम्भावना, दोनों ही समान रूप से मौजूद रहती हैं। इटली और जर्मनी, दोनों ही देशों में फ़ासीवादी उभार का एक बहुत बड़ा कारण मज़दूर वर्ग के ग़द्दार सामाजिक जनवादियों की हरक़तें रहीं। इन दोनों ही देशों में क्रान्तिकारी सम्भावना ज़बरदस्त रूप से मौजूद थी, लेकिन सामाजिक जनवादियों ने मज़दूर आन्दोलन को अर्थवाद, सुधारवाद, संसदवाद और ट्रेडयूनियनवाद की चौहद्दी में ही क़ैद रखा। पूरा मज़दूर आन्दोलन जर्मनी में सर्वाधिक संगठित था, लेकिन वह महज़ एक दबाव फ़ैक्टर बन कर रह गया जो प्राप्त कर लिये गये जनवादी अधिकारों से चिपका रह गया, जबकि पूँजीवाद का संकट अब माँग कर रहा था कि पूँजीवाद का विकल्प दिया जाय। किसी विकल्प के पेश न होने की सूरत में वही क्रान्तिकारी सम्भावना प्रतिक्रियावाद की दिशा में मुड़ गयी और जर्मनी में नात्सी पार्टी और इटली में फ़ासीवादी पार्टी इसके इस्तेमाल के लिए तैयार खड़ी थीं।

अन्त में, समाहार करते हुए हम कह सकते हैं कि फ़ासीवादी उभार की सम्भावना ऐसे पूँजीवादी देशों में हमेशा पैदा होगी **जहाँ पूँजीवाद बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के ज़रिये नहीं आया, बल्कि किसी भी प्रकार की क्रमिक प्रक्रिया से आया; जहाँ क्रान्तिकारी भूमि सुधार लागू नहीं हुए; जहाँ पूँजीवाद का विकास किसी लम्बी, सुव्यवस्थित, गहरी पैठी प्रक्रिया के ज़रिये नहीं बल्कि असामान्य रूप से अव्यवस्थित, अराजक और द्रुत प्रक्रिया से हुआ; जहाँ ग्रामीण क्षेत्रों में पूँजीवाद इस तरह विकसित हुआ कि सामन्ती अवशेष किसी न किसी मात्रा में बचे रहे।** ऐसे सभी देशों में पूँजीवाद का संकट बेहद जल्दी उथल-पुथल की स्थिति को पैदा कर देता है। समाज में बेरोज़गारी, ग़रीबी, अनिश्चितता, असुरक्षा का पैदा होना और करोड़ों की संख्या में जनता का आर्थिक, सामाजिक और भौगोलिक तौर पर उजड़ना बहुत तेज़ी से होता है। ऐसे में पैदा होने वाली क्रान्तिकारी परिस्थिति को कोई तपी-तपायी क्रान्तिकारी पार्टी सम्भाल सकती है। **फ़ासीवादी उभार होना ऐसी परिस्थिति का अनिवार्य नतीजा नहीं होता है। फ़ासीवादी उभार हर-हमेशा सामाजिक जनवादियों की घृणित ग़द्दारी के कारण और क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों की अकुशलता के कारण सम्भव हुआ है। जर्मनी और इटली दोनों ही इस तथ्य के साक्ष्य हैं।**

•

अगले अंक में हम भारत में फ़ासीवाद के उभार के इतिहास के बारे में पढ़ेंगे और साथ ही भारत में फ़ासीवाद से लड़ने के रास्तों पर विचार करेंगे। आज हर क्रान्तिकारी ताक़त के सामने यह सबसे जीवन्त और ज्वलन्त सवालों में से एक है। भारत में भी हम बेहद तेज़ी से उस पूँजीवादी संकट की तरफ़ बढ़ रहे हैं, जो क्रान्तिकारी सम्भावना और प्रतिक्रियावादी सम्भावना को समान रूप से जन्म देता है। फ़ासीवादी ताक़तें इस प्रतिक्रियावादी सम्भावना को सम्भालने की तैयारी में लगी हुई हैं। ऐसे में क्रान्तिकारी ताक़तों को अपनी तैयारियाँ कैसे करनी होंगी? यही अगली किश्त की प्रमुख विषय-वस्तु होगी।

(अगले अंक में जारी)

पंजीयन संख्या 71980/99 | डाक पंजीयन संख्या SSP/LW-NP/399/2009-11 | प्रेषक डाकघर - महानगर | प्रेषण तिथि - माह की 13, 14, 15 तारीख़

गोरखपुर में मज़दूरों की बढती एकजुटता और संघर्ष से मालिक घबराये

बरगदवा क्षेत्र में फिर से मज़दूर आन्दोलन की राह पर

बिगुल संवाददाता

गोरखपुर में पिछले दिनों तीन कारखाने के मज़दूरों के जुझारू संघर्ष की जीत से उत्साहित होकर बरगदवा इलाके के दो और कारखानों के मज़दूर भी आन्दोलन की राह पर उतर पड़े हैं। इलाके के कुछ अन्य कारखानों में भी मज़दूर संघर्ष के लिए कमर कस रहे हैं।

वर्षों से बुरी तरह शोषण के शिकार, तमाम अधिकारों से वंचित और अंसगठित बरगदवा क्षेत्र के हज़ारों मज़दूरों में अपने साथी मज़दूरों के सफल आन्दोलन ने उम्मीद की एक लौ जगा दी है।

माडर्न लेमिनेटर्स तथा मॉर्डन पैकेजिंग के मज़दूर आन्दोलन की राह पर

इस इलाके में प्लास्टिक की बोरियाँ बनाने वाले दो बड़े कारखाने हैं मॉडर्न लेमिनेटर्स प्रा.लि. और मॉर्डन पैकेजिंग प्रा.लि.। एक ही परिसर में स्थित इन दो कारखानों में कुल एक हज़ार से ज़्यादा मज़दूर काम करते हैं। इनमें करीब आधे मज़दूर ठेकेदार के हैं और आधे कम्पनी के हैं, लेकिन दोनों की हालत में कोई अन्तर नहीं है। सभी पीस रेट (मीटर रेट) पर काम करते हैं। रेट इतना कम है कि रोज़ 12 घण्टे 28-29 दिन लगातार काम करें तब जाकर करीब 4000 रुपये मज़दूरी बनेगी। लेकिन हमेशा इतना काम नहीं मिलता। वाइंडर का काम करने वालों को तो 12 घण्टे काम करने के बाद 2400 से 3000 रुपये ही मिलते हैं।

यहाँ पर करीब 150 लूम पर सीमेण्ट और खाद की बोरियाँ बनती हैं। प्लास्टिक के दानों को पिघलाकर शीट तैयार करना, उनकी कटाई-सिलाई सब यहीं होती है। पीवीसी पिघलाने के कारण कारखाने में भीषण गर्मी होती है और हालात स्वास्थ्य के लिए भी बेहद नुकसानदेह होते हैं। लेकिन इनसे बचाव का कोई इन्तज़ाम नहीं है।

इन दोनों कारखानों का मालिक बथवाल परिवार है जिसके मुखिया पवन बथवाल पहले शहर के कांग्रेसी मेयर थे और आजकल भाजपा में हैं। गोरखपुर के भाजपा सांसद योगी आदित्यनाथ से भी उनकी काफी करीबी है। मज़दूरों को डराने-धमकाने और चुप कराने के लिए वह हर तरह के हथकण्डे अपनाते रहे हैं। मज़दूरों ने पहले कई बार यूनियन बनाने की कोशिश की लेकिन मालिक ने एक-दो अगुआ मज़दूरों को पैसे देकर और बाकी को डरा-धमकाकर आन्दोलन की नौबत ही नहीं आने दी।

पिछले दिनों बरगदवा क्षेत्र की दो धागा मिलों तथा एक कपड़ा मिल के मज़दूर के सफल आन्दोलन (देखें, बिगुल, जुलाई 2009) के दौरान ही बोरी मिल मज़दूरों ने भी संघर्ष समिति तथा बिगुल मज़दूर दस्ता के साथियों से सम्पर्क करना शुरू कर दिया था। उन्होंने आपसी एकजुटता बनानी शुरू कर दी थी और कई बैठकों में व्यापक चर्चा के बाद मॉर्डन लेमिनेटर्स प्रा.लि. एन मॉर्डन पैकेजिंग प्रा.लि. मज़दूर संघर्ष समिति का गठन किया गया। संघर्ष समिति की ओर से तीन अगस्त को उप श्रमायुक्त को माँगपत्रक सौंपा गया तथा चेतावनी दी गयी कि यदि 14 दिन के अन्दर प्रबन्धन ने माँगों पर गम्भीरता से विचार कर कोई ठोस कार्रवाई नहीं की तो मज़दूर आन्दोलन शुरू कर देंगे। माँग पत्रक में ठेका तथा पीस रेट खत्म करके सभी मज़दूरों को नियमित करने, नियमानुसार न्यूनतम मज़दूरी देने, काम के घण्टे 8 करने, पीएफ तथा ई.एस.आई की सुविधा देने, साप्ताहिक तथा अर्जित अवकाश देने तथा काम की परिस्थितियों में सुधार सहित विभिन्न माँगें शामिल हैं।

श्रम कार्यालय का जैसा मज़दूर विरोधी चेहरा अब तक सामने आया है, उसे देखते हुए मज़दूरों को कोई भ्रम नहीं है कि उनकी माँगों पर सुनवाई होगी। वे जानते हैं कि अपने हक लड़कर ही हासिल करने होंगे और वे लड़ने के लिए एकजुट और तैयार हैं।

मज़दूरों की बढ़ती एकजुटता और जुझारूपन से मालिक घबराये

इस बीच इलाके के कई अन्य कारखानों के मज़दूर भी संघर्ष के लिए एकजुट हो रहे हैं। कई छोटे-बड़े कारखानों के मज़दूरों ने बिगुल मज़दूर दस्ता के साथियों से भी सम्पर्क किया है।

मज़दूरों के इन तेवरों को देखते हुए कुछ कारखानों के मालिकों ने किसी आन्दोलन से बचने के लिए पहले ही पेशबन्दी शुरू कर दी है। जालान सरिया यहाँ की सबसे पुरानी तथा बड़ी मिलों में से एक है। इसमें 1000 से ज्यादा मज़दूर काम करते हैं। इसमें ज़्यादातर काम ठेका मज़दूरों से करवाया जाता है जो कई-कई साल से बेहद कम मज़दूरी पर और बहुत खराब स्थितियों में काम कर रहे हैं। धधकती भट्ठी के आगे बिना किसी सुरक्षा इन्तज़ाम के घण्टों काम करने वाले इन मज़दूरों को सरकार द्वारा घोषित बुनियादी सुविधाएँ तक नहीं मिलतीं।

जैसे ही मालिक को पता चला कि मज़दूर आन्दोलन की तैयारी कर रहे हैं उसने फौरन काम के घण्टे 8 कर दिये तथा मज़दूरी भी बढ़ा दी। लेकिन ठेका खत्म कर मज़दूरों को नियमित करने सहित कई बुनियादी माँगें अभी बनी हुई हैं।

कुछ ऐसी ही स्थिति बदगदवा स्थित तीसरी धागा मिल जालानजी पॉलीटेक्स लि. में भी हुई। इसके मालिक विनोद कुमार जालान उसी अशोक जालान के भाई हैं जिनकी धागा मिल अंकुर उद्योग लि. के मज़दूरों ने सबसे पहले आन्दोलन का बिगुल फूँका था। 2002 में स्थापित इस मिल में 200 से ज्यादा मज़दूर वैसी ही भयंकर स्थितियों में काम करते हैं जिनमें गोरखपुर के अधिकांश मज़दूर खटने को मजबूर हैं। इन मज़दूरों ने भी आन्दोलन के दौरान संघर्ष समिति और बिगुल मजदूर दस्ता के साथियों से सम्पर्क किया था और उनके साथ कई दौर की बैठकें भी की थीं।

इसकी भनक मिलते ही मालिक ने पहले तो मज़दूरों को तरह-तरह से भरमाने की कोशिश की लेकिन उसकी दाल नहीं गली। मज़दूरों के लड़ाकू तेवरों से वह डरा हुआ था। 13 जुलाई को कपड़ा मिल मज़दूरों की जीत के बाद उसने 15 जुलाई को नोटिस निकाल दिया कि दूसरी मिलों के मज़दूरों की जो भी माँगें पूरी हुई हैं वे सब यहाँ भी पूरी की जायेंगी। इसलिए मज़दूर किसी प्रकार का आन्दोलन न करें। नोटिस में एक अगस्त से सारी माँगें लागू करने की घोषणा की गयी थी। मज़दूर इस बात पर एकजुट हैं कि अगर नोटिस में किये आश्वासनों को लागू नहीं किया गया तो वे आन्दोलन का रास्ता अपनायेंगे।

माँगें मानने के बाद लागू करने में मालिकों की तिकड़मबाज़ी

जिन तीन कारखानों में मालिकों ने मज़दूरों के संघर्ष के बाद उनकी माँगें मान ली थीं वहाँ अब वे उन्हें पूरी तरह लागू करने में दायें-बायें कर रहे हैं। अंकुर उद्योग प्रा.लि., वी.एन. डायर्स धागा मिल एवं कपड़ा मिल के मालिकान ने डीएलसी के समक्ष हुए समझौतों में जो माँगें मानी थीं उनमें से काम के घण्टे आठ करने को तो पिछले माह ही लागू कर दिया गया था लेकिन वेतन स्लिप देने, ई.एस.आई. तथा अन्य माँगों को वे लटकाये हुए हैं। न्यूनतम मज़दूरी देने में भी घपलेबाज़ी करके कुशल मज़दूरों का रेट न देकर सभी मज़दूरों को अर्द्धकुशल के रेट से मज़दूरी दी जा रही है। साथ ही कुछ मज़दूरों को दोगुनी मज़दूरी देने का लालच देकर वे बारह घण्टे काम कराने के लिए फुसलाने में लगे हुए हैं। लेकिन मज़दूर इन चालबाज़ियों को अच्छी तरह समझ रहे हैं और उनमें मालिकों की इन हरकतों पर तीखा आक्रोश है। अगर मालिकों ने ये हथकण्डे बन्द नहीं किये और स्वीकृत माँगों को पूरी तरह लागू नहीं किया तो मज़दूर फिर से आन्दोलन की राह पकड़ने के लिए भी तैयार हैं।

इस बीच मज़दूरों ने गोरखपुर और पूर्वी उत्तर प्रदेश के अन्य औद्योगिक क्षेत्रों में इन्हीं हालात में बुरी तरह शोषित-उत्पीड़ित अपने हजारों-हजार मज़दूर भाइयों तक एकजुटता और संगठन का अपना पैगाम भेजना शुरू कर दिया है।

यह जानलेवा महँगाई मुनाफ़ाखोरी की हवस और सरकारी नीतियों का नतीजा है!

(पेज 1 से आगे)

ऐसी भीषण महँगाई के पहले ही हालत यह थी कि देश की तीन चौथाई आबादी के भोजन में विटामिन और प्रोटीन जैसे जरूरी पौष्टिक तत्वों की लगातार कमी होती गयी है। आम आदमी के लिए प्रोटीन के मुख्य स्रोत दालों की कीमत में पिछले एक साल के अन्दर 110 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। हरी सब्जियाँ, दाल और दूध तो गरीब आदमी के भोजन से गायब ही चुके हैं। फल खाने की इच्छा होने पर वह मण्डी में बचे हुए सबसे खराब और सड़े-गले फल कुछ सस्ती कीमत पर लेकर चख सकता है। इसी का नतीजा है कि कुपोषण के कारण कम वजन वाले बच्चों की सबसे बड़ी संख्या भारत में है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री उत्सा पटनायक द्वारा किये गये एक अध्ययन से पता चला कि आज प्रति व्यक्ति औसत खाद्य उपलब्धता बंगाल में 1942-43 में आये भीषण अकाल के दिनों के बराबर पहुँच चुकी है। ग्रामीण क्षेत्रों में बहुतेरे परिवारों को दोनों वक्त या सप्ताह के सातों दिन खाना नहीं मिलता। आज भी लगभग दस हजार बच्चे रोज कुपोषण और उससे होने वाली बीमारियों के कारण मर जाते हैं। भारत सरकार बाल-पोषण कार्यक्रम और सस्ते गल्ले आदि के लिए तो आवण्टन घटाती जा रही है लेकिन पूँजीपतियों को सैकड़ों करोड़ की सब्सिडी देने में उसे कोई गुरेज़ नहीं होता।

पूँजीवादी नीतियों के कारण अनाजों के उत्पादन में कमी आती जा रही है। भारत ही नहीं, पूरी दुनिया में1 आज खेती संकट में है। पूँजीवाद में उद्योग के मुकाबले खेती का पिछड़ना तो लाज़िमी ही होता है लेकिन भूमण्डलीकरण के दौर की नीतियों ने इस समस्या को और गम्भीर बना दिया है। अमीर देशों की सरकारें अपने फार्मरों को भारी सब्सिडी देकर खेती को मुनाफ़े का सौदा बनाये हुए हैं। लेकिन तीसरी दुनिया के देशों में सरकारी उपेक्षा और पूँजी की मार ने छोटे और मझोले किसानों की कमर तोड़ दी है। साम्राज्यवादी देशों की एग्रीबिजनेस कम्पनियों और देशी उद्योगपतियों की मुनाफ़ाखोरी से खेती की लागतें लगातार बढ़ रही हैं और बहुत बड़ी किसान आबादी के लिए खेती करके जी पाना मुश्किल होता जा रहा है। इसका सीधा असर उन देशों में खाद्यान्न उत्पादन पर पड़ रहा है।

दूसरे, वैश्विक पैमाने पर खेती का कारोबार चन्द दैत्याकार कम्पनियों के कब्जे में आ चुका है जो खाद-बीज-कीटनाशक और मशीनों जैसे खेती के साधनों से लेकर फसलों के व्यापार तक को नियन्त्रित करती हैं। यही कम्पनियाँ इथेनॉल के उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए सरकारी सब्सिडी का भी फ़ायदा उठा रही हैं। इसका नतीजा यह हो रहा है कि खाद्यान्न की खेती के लिए तय ज़मीनों का इस्तेमाल अमीरों की कारें दौड़ाने के लिए इथेनॉल के उत्पादन में किया जा रहा है।

सबसे बड़ा कारण यह है कि मेहनतकश जनता की मज़दूरी में लगातार आ रही गिरावट के कारण उसकी खरीदने की शक्ति कम होती जा रही है। देश की अर्थव्यवस्था जब चमक रही थी तब भी आम मेहनतकश आबादी की वास्तविक आमदनी में कोई बढ़ोत्तरी नहीं हुई थी। दिहाड़ी पर काम करने वाली 44 करोड़ आबादी आज से 10 साल पहले जितना कमाती थी आज भी बमुश्किल उतना ही कमा पाती है जबकि कीमतें दोगुनी-तीन गुनी हो चुकी हैं। भारी अर्द्धसर्वहारा आबादी और निम्नमध्यवर्गीय आबादी को भी पेट भरने के लिए अपनी ज़रूरतों में कटौती करनी पड़ रही है। अब मन्दी के दौर में उनकी हालत और भी खराब होती जा रही है। बहुत बड़ी आबादी छँटनी, वेतन में कटौती और बेरोज़गारी के कारण तबाही के कगार पर है लेकिन इस आबादी के लिए सरकार के पास कोई राहत योजना नहीं है। मगर टेक्सटाइल कम्पनियों को सरकार ने फौरन 2546 करोड़ रुपये की सहायता दे डाली।

महँगाई पूँजीवादी समाज में खत्म हो ही नहीं सकती। जब तक चीज़ों का उत्पादन और वितरण मुनाफ़े कमाने के लिए होता रहेगा तब तक महँगाई दूर नहीं हो सकती। कामगारों की मज़दूरी और चीज़ों के दामों में हमेशा दूरी बनी रहेगी। मज़दूर वर्ग सिर्फ़ अपनी मज़दूरी में बढ़ोत्तरी के लिए लड़कर कुछ नहीं हासिल कर सकता। अगर उसके आन्दोलन की बदौलत पूँजीपति थोड़ी मज़दूरी बढ़ाता भी है तो दूसरे हाथ से चीज़ों के दाम बढ़ाकर उसकी जेब से निकाल भी लेता है। मज़दूर की हालत वहीं की वहीं बनी रहती है। इसलिए मज़दूरों को मज़दूरी बढ़ाने के लिए लड़ने के साथ-साथ मज़दूरी की पूरी व्यवस्था को खत्म करने के लिए भी लड़ना होगा।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्रापिफक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग: कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फ़ाउण्डेशन, लखनऊ। सम्पादक : **डा. दूधनाथ, सुखविन्दर** • सम्पादकीय पता : **69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226 006** • सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर,